भारतीय ज्ञान-विज्ञान परम्परा एवं प्रयोग

अभ्यास पुस्तिका

वेद-विभूषण - II वर्ष / उत्तरमध्यमा - II वर्ष / कक्षा 12वीं

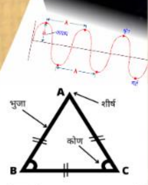

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद संस्कृत शिक्षा बोर्ड

(शिक्षा मन्त्रालय भारत सरकार द्वारा स्थापित एवं मान्यता प्राप्त)

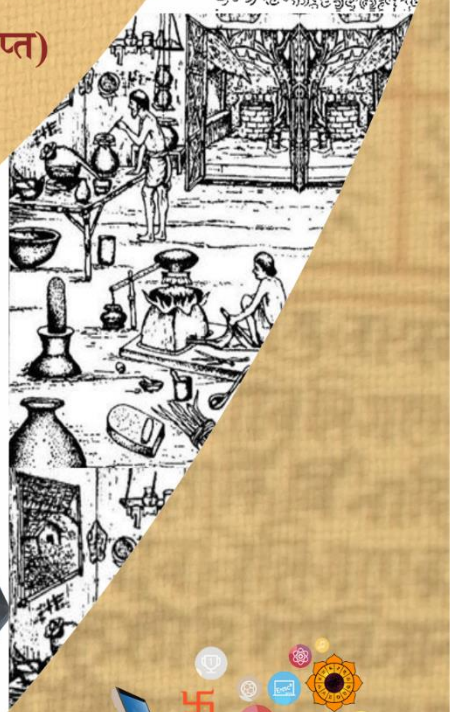

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। ऊर्वारुकमिव वन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्॥

सं ते मज्जा मज्ज्ञा भवतु समु ते परुषा परुः। सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्वयपि रोहतु॥

समदोष: समाग्निश्च समधातुमलक्रिय:। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

लवणेन सुवर्णं सन्दध्यात्, सुवर्णेन रजतं, रजतेन लोहं, लोहेन सीसं, सीसेन त्रपु।

यास्ते पूषन् नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति।

त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः, पादोऽस्येहाभवत् पुनः।

त्वामग्ने पुष्करादधि अथर्वा निरमन्थत ।

यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।

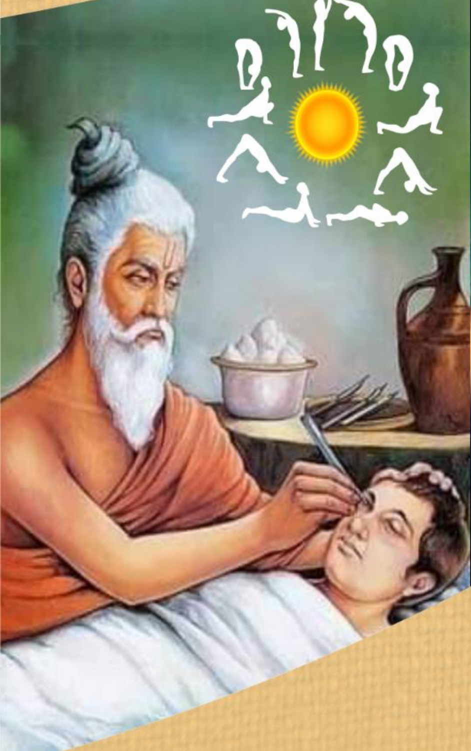

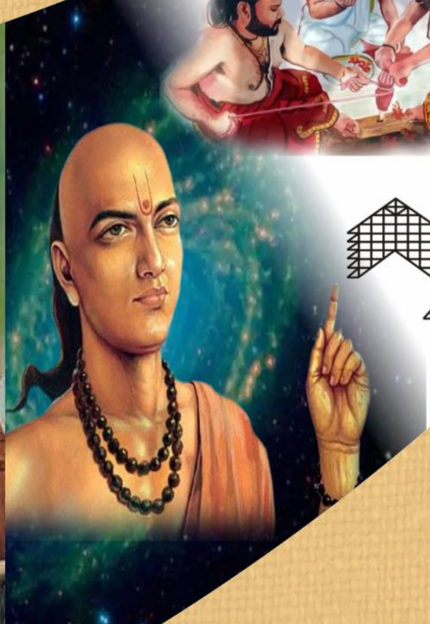

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

Phone : (0734) 2502266, 2502254,

E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in

अध्याय - 1

जीवन, स्वास्थ्य और कल्याण के लिए आयुर्वेद

1.1 आयुर्वेद की परिभाषा –

आयुर्वेद शब्द का निर्माण दो शब्दों से मिलकर हुआ है, यथा आयु अर्थात् जीवन और वेद अर्थात् ज्ञान जिससे जीवन का ज्ञान प्राप्त हो वह ''आयुर्वेद'' कहलाता है ।

इस प्रकार आयुर्वेद जीवन या जीवन विज्ञान का ज्ञान है।

शरीर के चेतन्य भाव को ''आयु'' कहते हैं ।

आचार्य चरक के अनुसार आयुर्वेद वह ज्ञान है जिसके द्वारा आयु के हित एवं अहित के साथ सुख दुःख एवं मान (प्रमाण) का विचार किया जाय।

आचार्य सुश्रुत के अनुसार आयुर्वेद आयु का वह ज्ञान है जो आयु सम्बन्धित हित और अहित का ज्ञान कराएँ, आयु के सुख और दुःख रूपी स्वरूप का ज्ञान कराए और आयु के मान (प्रमाण) का ज्ञान कराए।

1.2 आयुर्वेद का प्रयोजन –

प्राचीन ग्रंथकारों ने आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान के 2 प्रयोजन बताएँ हैं –

1) स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा
2) रोगग्रस्त व्यक्ति के रोग का निवारण

इस विषय में चरकसंहिता (सूत्रस्थान 30.26) का उद्धरण प्रासङ्गि है –

प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च।

(च.सू. 30.26)

यदि कोई व्यक्ति अपने स्वास्थ्य की रक्षा किसी कारणवश मिथ्या आहार-विहारादि के कारण नहीं कर पाता है और अस्वस्थ हो जाता है तो उसके रोग निवारण के उपाय भी आयुर्वेद में वर्णित हैं।

1.3 स्वास्थ्य सेवा के लिए एकीकृत दृष्टिकोण –

आयुर्वेद के सिद्धांतों ने संसार की प्रथम ओषधी के रूप में कार्य किया। आयुर्वेद की परिभाषा एकीकृत चिकित्सा की आधुनिक धारणाओं के अनुरूप ही है। एकीकृत चिकित्सा एक ही समय में शरीर, मन और स्वयं को स्वस्थ करने का प्रयास करती है या मानव को संपूर्ण रूप स्वस्थ करती है। एकीकृत चिकित्सा पद्धति सुरक्षित और उच्च गुणवत्ता वाले वैकल्पिक चिकित्सा उपचारों को मुख्य चिकित्सा पद्धति से जोड़ती है। आयुर्वेद के अनुसार मानव जीवन शरीर, मन और स्वयं के तिपाई पर स्थित है। आयुर्वेद के अनुसार संसार में उपचार की कई प्रणालियाँ प्रचलित है, हमें सभी प्रणालियों की जाँच करके एकीकृत प्रणाली बनाना चाहिए।

1.4 शरीर के आंतरिक वातावरण का सन्तुलन –

आयुर्वेद, स्वास्थ्य को शरीर के आंतरिक वातावरण के गतिशील सन्तुलन के रूप में परिभाषित करता है। यह इंद्रियों, शरीर अङ्गों, मन और स्वयं पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। जैसे सूर्य, चन्द्रमा और हवा बाहरी वातावरण के सन्तुलन को बनाए रखतें हैं, शरीर स्व विनियमन द्वारा उपचय और अपचयी गतिविधियों को सन्तुलित करके स्वयं को बनाए रखता है।

1.5 बाहरी वातावरण के साथ सामञ्जस्य -

आयुर्वेद बताता है कि बाहरी वातावरण के साथ सामञ्जस्य स्थापित करके आंतरिक वातावरण का सन्तुलन बनाए रखा जा सकता है। आयुर्वेद के अनुसार मानव, ब्रह्माण्ड का एक प्रतीक है। सूक्ष्म जगत, स्थूल जगत का एक लघु निरूपण है। मनुष्य एक ही तत्त्व से बने होते हैं जो प्रकृति को बनाते हैं।

1.6 आयुर्वेदिक चिकित्सा के सिद्धान्त –

आयुर्वेदिक चिकित्सा निवारण और उपचारात्मक दोनों औषधियों से संबंधित हैं। आयुर्वेद में दिनचर्या एवं ऋतुचर्या का प्रावधान कर उसके माध्यम से प्रातः काल उठने से लेकर रात को शयन तक की व्यवस्थित विधि का निर्देश दिया गया है। इसमें मलत्याग, दन्तधावन (मन्जन),

अभ्यन्ग (मालिश), व्यायाम, उबटन, स्नान, गन्ध माला आदि सुन्गधित द्रव्यों का धारण, वस्त्र धारण करने के बाद विधिवत आहार ग्रहण कर जीविकोपार्जन के लिए कर्म करने का उल्लेख है। इस दिनचर्या में ऋतु के अनुसार परिवर्तन भी हो जाता है। अतः जो व्यक्ति ऋतुचर्चा को ध्यान में रखते हुए दिनचर्या का प्रयोग करता है वह स्वस्थ रहता हैं। इसी क्रम में आयुर्वेद के विशिष्ट उपक्रम – पञ्चकर्म, रसायन एवं वाजीकरण हैं। रसायन तथा वाजीकरण शरीर को अधिक पुष्ट बनाते हैं।

1.7 पञ्चमहाभूत सिद्धान्त –

मानव शरीर प्रकृति के पाँच तत्त्वों से मिलकर बना है।

भौतिक ब्रह्माण्ड पाँच तत्त्वों या पञ्चमहाभूतों से मिलकर बना है, जो प्रतीकात्मक रूप से पृथिवी, जल (आप), अग्नि (तेजस), वायु और अन्तरिक्ष द्वारा दर्शाए गए हैं। सरल रूप में भौतिक पदार्थ स्थान ठोस, द्रव, गैस और तापीय अवस्थाओं को निरुपित करते हैं और ध्वनि, गन्ध, स्वाद, रंग, स्पर्श पाँच अनुभूतियों के अनुरूप होते हैं। शरीर में उत्पन्न असन्तुलन को पर्यावरण से उपर्युक्त पदार्थों का उपयोग करके ठीक किया जा सकता है।

पञ्चमहाभूतों का शरीर में व्यावहारिक स्वरूप वात, पित्त एवं कफ इन तीन दोषों के माध्यम से होता है। इन दोषों की साम्य अवस्था स्वास्थ्य का परिचायक है और उनकी विषम अवस्था रोग का लक्षण है वात, पित्त एवं कफ शरीर की क्रियात्मक इकाई है। कफ, पृथिवी और जल के सिद्धान्तों का एक संयोजन है जो उपचय की क्रिया का प्रतिनिधित्व करता है। पित्त जल और अग्नि के सिद्धांतो का एक संयोजन है जो परिवर्तन एवं अपचय का प्रतिनिधित्व करता है।

हम जो भोजन ग्रहण करते हैं वह तीनों दोषों और पाचन अग्नि के प्रभाव से शरीर के सात संरचनात्मक घटक (धातु) में बदल जाता है। शरीर में रस, रक्त, माँस, फैट (मेद), अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात धातुएँ है। शरीर से अपशिष्ट उत्पाद मल, मूत्र एवं पसीने के रूप में उत्सर्जित होते हैं। जब यह परिवर्तन पूरा हो जाता है, तो ओज या जीवन शक्ति और शरीर की प्रतिरक्षा क्षमता स्वास्थ्य के उच्च स्तर का निर्माण करती है।

1.8 शरीर के रोगों का उपचार –

शरीर के तीन दोषों वात, पित, कफ की विषम अवस्था एवं शरीर की धातु के असन्तुलन की स्थिति में रोग उत्पन्न होते हैं। पौधे, जीव और खनिज लवणों के उत्पादों के उचित संयोजन से तैयार की गई औषधि द्वारा एवं आहार और व्यवहार के परिवर्तन के द्वारा रोग का उपचार किया जा सकता है। चिकित्सा, आहार और व्यवहार आयुर्वेदिक उपचार के तीन घटक है।

उपचारात्मक इलाज –

आन्तरिक उपाय जिसमें शोधन (डिटॉक्सिफिकेशन) और शमन दर्द निवारक उपचार के माध्यम से जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए उपयोग किए जाने वाले तरीके सम्मिलित है। बाहरी उपाय, स्नेहल (तेल से उपचार), स्वोदन (हर्बल भाप का उपयोग करके भाप चिकित्सा) और हर्बल पेस्ट के उपयोग आदि।

सर्जिकल तरीके, इनमें ऊतकों, अङ्गों और किसी भी हानिकारक शारीरिक वृद्धि को हटाना शामिल है।

हर्बल उपाय, जिसमें रसशास्त्र (विभिन्न हर्बल और सूक्ष्म मात्रा में धातु के मिश्रण) का उपयोग सम्मिलित है।

आयुर्वेद में पञ्चकर्म सबसे महत्वपूर्ण उपचार प्रक्रिया होती है। यह आयुर्वेद की शोधन प्रक्रिया है, जिसमें शरीर से विषाक्त पदार्थों को बाहर निकालने और शरीर के त्रिदोषों में सन्तुलन की स्थिति को प्राप्त करने के लिए पाँच क्रियाएँ या विधि अपनाई जाती है। पञ्चकर्म मानसिक कार्यों, पाचन प्रक्रिया और ऊतक चैनलों की बहाली और उपचार को बढ़ावा देता है।

1.9 आयुर्वेद के प्रमुख ग्रंथ –

1. **चरकसंहिता** – आयुर्वेद के उपलब्ध ग्रंथों में यह प्राचीनतम है। इसमें पञ्चकर्म का बहुत ही व्यवस्थित वर्णन है। अनेक रोगों की चिकित्सा औषधियों द्वारा विस्तृत वर्णन सहित उपलब्ध है।
2. **सुश्रुतसंहिता** – यह शल्यशास्त्र का प्रमुख ग्रंथ है।

3. **अष्टांग्रहृदय** – अष्टांगहृदय में आयुर्वेद के अन्य विषयों के साथ रसायनों का विशेष रूप से वर्णन मिलता है।

4. **भावप्रकाश** – इसमें सभी अंगो की चिकित्सा का वर्णन है। फिरंग रोग तथा शितला रोगों का वर्णन इसमें किया गया है। यह द्रव्यगुण विज्ञान का प्रसिद्ध ग्रंथ है।

5. **माधवनिदान** – इसमें ज्वर, अतिसार, अर्श, अग्निमंदता, कृमि, कामला, राजयक्ष्मा (टी.बी.), उन्माद, हृदयरोग, अश्मरी, प्रमेह आदि का वर्णन है।

6. **शार्ङ्गधरसंहिता** – रसायन तथा स्वर्ण आदि धातुओं की भस्म बनाने की प्रक्रिया का भी इसमें विवरण है। सर्वप्रथम नाड़ी – परीक्षा का विवेचन इसी ग्रंथ में किया गया है।

प्रश्नावली

1) आयुर्वेद के ग्रंथो में सबसे प्राचीनतम ग्रंथ है?

2) शरीर के 7 संरचनात्मक घटकों के नाम लिखिए।

3) आयुर्वेद के प्रमुख ग्रंथो के नाम लिखिए।

4) आयुर्वेद की व्यक्तिगत चिकित्सा की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

5) पञ्चकर्म पद्धति क्या है ?

अध्याय - 2

प्राचीन भारत में चिकित्सा परम्परा का ऐतिहासिक विकास

2.1 आयुर्विज्ञान के प्रमुख अङ्ग –

भारत में चिकित्सा परम्परा का इतिहास कई हजार वर्ष पूर्व का है। ऋग्वेद में आयुर्विज्ञान सन्बन्धी प्रसंग वर्णित है। अथर्ववेद में रोगों के नाम, लक्षण, औषध-द्रव्यों एवं रोगनिवारण हेतु उपायों के बारे में विस्तार से वर्णन किया है, इसलिए आयुर्वेद को ऋग्वेद का उपवेद कहा जाता है।

आयुर्वेद की महत्ता के कारण ही चरक संहिता (सामान्य चिकित्सा), सुश्रुत संहिता (सर्जरी), कश्यप संहिता (बाल चिकित्सा) को एक हजार से अधिक बार संपादित एवं संशोधित किया गया। आयुर्वेद आठ शाखाओं में विभक्त है – सामान्य चिकित्सा, सर्जरी, नेत्र विज्ञान, दंत चिकित्सा, बाल चिकित्सा, मनोचिकित्सा, विष विज्ञान, काय चिकित्सा, प्रजनन चिकित्सा। आठ भागों को अष्टांग आयुर्वेद के नाम से भी जाना जाता हैं।

2.2 सर्जरी की परम्परा –

सुश्रुतसंहिता में इस शल्यचिकित्सा का विस्तृत वर्णन किया है। शरीर में प्रविष्ट या अवस्थित दूषित पदार्थों को निकालने के लिए यंत्रों, क्रियाओं तथा व्रणों के निचय को शल्यतन्त्र कहते हैं।

सुश्रुत ने शल्यचिकित्सा को आयुर्वेद का प्रधान भाग कहा है क्योंकि प्रहारजन्य व्रणों (इंजुरी) के विरोपण तथा कटे हुए अङ्गों के पुनः स्थापन का चमत्कार इसमें होता है। शरीर के अवयवों कों चीर-फाड़ करने से त्वरित रोग-निवारण होता है। शस्त्रकर्म (ऑपरेशन) के साथ ही क्षार प्रयोग (क्षार सूत्र) जलों का प्रयोग, अग्निकर्म आदि को शल्य के अन्तर्गत ही माना जाता हैं। सिन्धु घाटी सभ्यता की खुदाई के दौरान मेहरगढ़ शहर से छिद्र किए हुए दाँतो की संरचना प्राप्त हुई जो दंतचिकित्सा को बताता है। हड़प्पा और लोथल से कांस्ययुगीन खोपड़ी प्राप्त हुई जो सर्जिकल प्रयोग को बताता है।

ट्रैपेशन (कपाल छेदन), प्रागैतिहासिक समाज में प्रचलित शल्य चिकित्सा का एक सामान्य तरीका था। जो पाषाण युग से चल रहा है। इस पद्धति में वाल्ट के माध्यम से खोपड़ी की ड्रिलिंग होती है इस पद्धति का उपयोग सिर की चोट एवं सिर में रक्त के थक्के को हटाने के लिए इसका उपयोग किया जाता था।

सुश्रुत संहिता में शल्य चिकित्सा के विभिन्न प्रकरणों को बताया गया है। शल्य क्रिया के लिए सुश्रुत 125 तरह के उपकरणों का प्रयोग करते थे। ये उपकरण शल्य क्रिया की जटिलता को देखते हुए खोजे गए थे। इन उपकरणों में विशेष प्रकार के चाकू, सुईयां, चिमटिया आदि हैं। सुश्रुत ने 300 प्रकार की ऑपरेशन प्रक्रियाओं की खोज की। सुश्रुत ने कॉस्मेटिक सर्जरी में विशेष निपुणता हासिल कर ली थी। सुश्रुत नेत्र शल्य चिकित्सा भी करते थे। सुश्रुतसंहिता में मोतियाबिन्द के ऑपरेशन करने की विधि को विस्तार से बताया गया है। उन्हें शल्य क्रिया द्वारा प्रसव कराने का भी ज्ञान था तथा टूटी हुई हड्डियों का पता लगाने और उनको जोड़ने में विशेषता प्राप्त थी। शल्य क्रिया के दौरान होने वाले दर्द को कम करने के लिए विशेष औषधियों का प्रयोग करते थे इसके अतिरिक्त मधुमेह एवं मोटापे रोग की भी जानकारी थी। प्रारम्भिक अवस्था में शल्य क्रिया के अभ्यास के लिए फलों, सब्जियों और मोम के पुतलों का उपयोग करते थे। मानव शरीर की आन्तरिक रचना को समझाने के लिए सुश्रुत शव पर शल्य क्रिया करके अपने शिष्यों को समझाते थे।

2.3 आनुवांशिक रोगों की चिकित्सा –

चरक संहिता में आनुवांशिक रोगों का विवरण मिलता है। ऋषि चरक के अनुसार प्रजनन तत्त्व का निर्माण बीजों से मिलकर हुआ है जो भागों और उपभागों में विभाजित हो जाता है।

प्रत्येक भाग या एक बीज का उपभाग शरीर के एक विशेष अङ्ग का प्रतिनिधित्व करता है। माता-पिता में होने वाले आनुवांशिक रोगों का स्थानान्तरण बीजों के द्वारा अगली पीढी में होता है। चरक संहिता से आनुवांशिक रोगों की चिकित्सा के विषय में वर्णन प्राप्त होता है।

2.4 चेचक के लिए टीका निर्माण –

चेचक के टीके निर्माण के समय एडवर्ड जेनर द्वारा भारतीय टीकाकरण पद्धति का भी अभ्यास किया गया इसे लन्दन कॉलेज के फिजिशन होल्वेल द्वारा प्रमाणित किया गया।

चेचक के टीके का निर्माण एडवर्ड जेनर ने किया। सूक्ष्मजीव एवं परजीवी सिद्धान्त – चरक संहिता में जीवाणुओं को दो भागों में विभाजित किया हैं।

1) रोगजनक जीवाणु

2) गैर रोगजनक जीवाणु

रोगजनक जीवाणुओं में रोगाणु आते हैं जिन्हे हम नग्न आँखों के द्वारा नहीं देख सकते हैं। रोगाणुओं को देखने के लिए सूक्ष्मदर्शी यन्त्र का उपयोग किया जाता है । रोगाणु के आकार एवं आकृत्ति का वर्णन भी किया गया है।

2.5 सन्क्रामक रोग एवं महामारी –

सुश्रुत संहिता में सन्क्रामक रोगों का वर्णन मिलता है। इस प्रकार के रोगों का सञ्चरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के सम्पर्क में आने से, वायु के द्वारा, कपड़ों के आदान प्रदान से एवं यौन सम्बन्धों के द्वारा होता है। चरक संहिता में महामारी एवं सन्चरणीय रोगों से बचने के उपायों के बारे में बताया गया है।

2.6 अनुसन्धान –

भारत में आयुर्वेद का अनुसन्धान आयुष मन्त्रालय द्वारा किया जाता हैं। जो अनुसन्धान संस्थानों के लिए राष्ट्रीय नेटवर्क है। यह आयुर्वेद, योग और प्राकृतिक चिकित्सा, विभाग, यूनानी, सिद्ध और होम्योपैथी के लिए संक्षिप्त नाम है।

प्रश्नावली

1) अष्टांग आयुर्वेद क्या है ?

2) आयुर्वेद के तीन मूलग्रंथो के नाम लिखिए।

3) प्राचीन भारतीय सर्जरी प्रणाली को समझाइए।

अध्याय - 3

भौतिकी के प्राचीन भारतीय स्रोत

3.1 वैदिक वाङ्मय में भौतिकी के तत्त्व –

1. वेद – ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में संसार की उत्पत्ति के विषय में बताया गया है। इसमें ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का दार्शनिक वर्णन अत्यन्त उत्कृष्ट रूप से किया गया है।
2. उपनिषद् – वैदिक विज्ञान के विकास में उपनिषद् का महत्वपूर्ण योगदान है। आकाश, वायु, जल, अग्नि, प्राण एवं मन आदि के विषय में अनेक संकेत प्राप्त हुए है।

3.2 द्रव्य और ऊर्जा का रूपान्तरण –

ऋग्वेद के इस मन्त्र मे वर्णन है कि अदिति (प्रकृति, द्रव्य) से दक्ष (ऊर्जा) उत्पन्न होती है तथा दक्ष (ऊर्जा) से अदिति (द्रव्य) इसका अभिप्राय यह है कि द्रव्य और ऊर्जा परस्पर रूपान्तरित हो सकते हैं अर्थात् द्रव्य से ऊर्जा और ऊर्जा से द्रव्य।

इसी सिद्धान्त को आधुनिक भौतिकी में प्रो. आइंस्टाइन ने प्रतिपादित किया है कि द्रव्य एवं ऊर्जा न नष्ट किया जा सकती है और न ही उत्पन्न की जा सकती है।

3.3 गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त –

बृहत् जाबाल उपनिषद् में गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त को आधारशक्ति नाम से जाना जाता है। इसके 2 भाग है।

(1) ऊर्ध्वशक्ति या ऊर्ध्वगः ऊपर की ओर खीचकर जाना जैसे – जल का नीचे की ओर जाना या पत्थर आदि का नीचे आना।

महर्षि पतञ्जलि (150 ई. पूर्व) ने व्याकरण महाभाष्य में इस गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त का उल्लेख करते हूए पृथिवी के आकर्षण शक्ति का वर्णन किया है कि यदि मिट्टी का ढेला ऊपर की ओर फेंका जाता है तो वह अधिकतम वेग को पूरा करने पर न टेढ़ा जाता है और न ऊपर चढता है वह पुनः पृथिवी पर आ जाता है।

आकृष्टिशक्ति – भास्कराचार्य द्वितीय (1114) ई. ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्त शिरोमणि में गुरुत्वाकर्षण के लिए आकृष्टिशक्ति शब्द का प्रयोग किया हैं। भास्कराचार्य का कथन है कि पृथिवी में आकर्षण शक्ति है, अतः वह ऊपर के ओर की भारी वस्तु को अपनी ओर खीचती हैं। वह वस्तु पृथिवी पर गिरती है।

आर्कषण के इसी सिद्धान्त को भौतिकी में न्यूटन द्वारा प्रतिपादित किया गया।

3.4 ऊर्जा संरक्षण का नियम –

ऊर्जा को न तो उत्पन्न किया जा सकता है और न ही नष्ट किया जा सकता है इसे एक रूप से दूसरे रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। यह सिद्धान्त आइन्स्टाइन ने प्रतिपादित किया।

विद्युत चुम्बकीय तरंगे –

विद्युत चुम्बकीय तरंगों के सन्चरण के लिए माध्यम की आवश्यकता नही होती है तथा ये तरंगे निर्वात मे भी सन्चारित हो सकती है । ये तरंगे चुम्बकीय एवं विद्युत क्षेत्रों के दोलन से विद्युत चुम्बकीय तरंगे उत्पन्न होती है ।

प्रकाश तरंगे, ऊष्मीय विकिरण, X-किरणे, रेडियो तरंगे, विद्युत चुम्बकीय तरंगों का उदाहरण है ।

ऋग्वेद के **एवयामरुदात्रेयः** सूक्त (5.87) के नौ मन्त्रों मे विद्युत चुम्बकीय तरंगों का उल्लेख किया गया है ।

1. विद्युत चुम्बकीय तरंगों को अत्यधिक ऊर्जा वाली एवं तीव्र गति से चलने वाली तरंगों के रूप में बताया गया है ।
2. ये तरंगें स्वयं की शक्ति से उत्पन्न होने वाली तरंगें है ।
3. इन तरंगों में अत्यधिक ज्योति है एवं यह तरंगें अग्नि की लपट की तरह चलती है ।
4. ये किरणे अत्यधिक वेग से सन्चरण करती है ।
5. ये तरंगें विशाल क्षेत्र (स्पेक्ट्रम) का निर्माण करती है ।

2) **ऊर्जा के विभिन्न रूप –**

ऋग्वेद में अग्नि (ऊर्जा) के अनेक रूपों का उल्लेख है। यजुर्वेद में समुद्री अग्नि जलीय ऊर्जा, सौर ऊर्जा, आकाशीय ऊर्जा, भूगभीय ऊर्जा, वृक्षादि से उत्पन्न ऊर्जा का उल्लेख मिलता है। सूर्य से प्राप्त ऊर्जा सौर ऊर्जा कहलाती हैं।

3.5 गति एवं उसके प्रकार –

"गमन कर्म को गति कहते हैं"

आधुनिक भौतिकी में ऐसी तरंगो को अनुप्रस्थ तरंगे कहते है, क्योंकि इसमें माध्यम के कण तरंग की गति के लम्बवत् दोलन करते हैं।

सायणचार्य ने सूर्यसूक्त की व्याख्या में उस काल में मात्रकों के अनुसार प्रकाश की गति 2202 योजन प्रतिअर्द्धनिमेष बताई है, जो लगभग 186300 मील प्रति सेकेण्ड या 3 108 किमी/से. के समान हैं। गतियों के विवेचन में वैशेषिक दर्शन के स्थिति स्थापक सिद्धान्त में महर्षि कणाद एक उदाहरण देते है जिसमें बताया गया है कि वृक्ष की टहनी को हम जितना खींचते हैं, उतना ही वह वापस जाती हैं।

3.6 प्रकाश की विभिन्न घटनाएँ –

1) **प्रकाश की परावर्तन घटना का विवरण –**

सिद्धान्त तत्त्व विवेक कमलाकर भट्ट (1600 ई.) पूर्व रचित ग्रंथ में दिया गया हैं। सूर्य सिद्धान्त में भी ग्रहयुति अध्याय में दर्पणों को विभिन्न कोणों पर एवं समानान्तर जोड़कर ग्रहों को देखने की पद्धति है। यास्क के निरूक्त (700 ई.पू.) में सातवें अध्याय में वैश्वानर के स्वरूप के प्रसंग में सूर्य रश्मियों को कांस अथवा मणि के द्वारा केन्द्रित करके गोमय (गोबर) के जलाने का उदाहरण हैं। जो आधुनिक विज्ञान में उत्तल लैंस द्वारा सूर्य किरणों के अपवर्तन अथवा अवतल दर्पण द्वारा सूर्य किरणों के परावर्तन का उदाहरण हैं।

आधुनिक भौतिकी में प्रकाश का परावर्तन –

जब कोई प्रकाश किरण किसी परावर्तक पृष्ठ से टकराकर वापस उसी माध्यम में लौट जाये तो इस घटना को प्रकाश का परावर्तन कहते हैं।

आधुनिक भौतिकी में प्रकाश का अपवर्तन – जब कोई प्रकाश किरण एक माध्यम से दूसरे माध्यम में प्रवेश करती है तो वह अपने मार्ग से विचलित हो जाती है इस घटना को प्रकाश का अपवर्तन कहते हैं।

2) प्रतिबिंब का निर्माण –

परवर्ती संस्कृत वाङ्मय में पञ्चतंत्र (300 ई.पू.) की कथा **बुद्धिर्यस्य बलं तस्य** में खरगोश जब सिंह को कुएँ के पास ले जाता है, तो सिंह जल में अपना प्रतिबिंब देखकर गर्जना करता है, यहाँ उल्लेख है कि अपनी गर्जना की प्रतिध्वनि दुगुनी सुनाई देती हैं। इस प्रकार प्रतिबिंब और प्रतिध्वनि का ज्ञान भी हमारे भारतीय ऋषियों को था।

3) इन्द्रधनुष का निर्माण –

आचार्य वाराहमिहिर ने बृहत्संहिता में इन्द्रधनुष के निर्माण की प्रक्रिया दी है किस प्रकार सूर्य की सात रंगों की किरणे इन्द्रधनुष बनाती है। वाराहमिहिर का कथन है कि सूर्य की विविध रङ्गों वाली किरणे जब मेघयुक्त आकाश में वायु से टकराकर छिटकती है, तब धनुष का रूप धारण करतीं है। इसे इन्द्रधनुष कहते हैं।

कालमापन के संदर्भ में उदयनाचार्य की किरणावली में काल का विभाजन इस प्रकार किया गया है–

2 क्षण	= 1 लव	2 लव	=1 निमेष
18 निमेष	= 1 काष्ठा	30 काष्ठा	= 1 कला
30 कला	= 1 मुहूर्त	30 मुहूर्त	= 1 दिन

सिद्धान्तशिरोमणि में कालमापन की विधि

100 त्रुटियाँ	= 1 तात्पर्य	30 तात्पर्य	= 1 निमेष
18 निमेष	= 1 काष्ठा	30 काष्ठा	= 1 कला
30 कला	= 1 घटिका	2 घटिका	= 1 क्षण
30 क्षण	= 1 अहोरात्र		

प्रश्नावली

1) दर्पणों को जोड़कर ग्रहों को देखने की पद्धति किस ग्रंथ में बतायी गई हैं?

2) सूर्यसूक्त के अनुसार प्रकाश की कितनी गति थी ?

3) यास्क के निरूक्त में काँस या मणि से सूर्य की किरणों को केन्द्रित करके गोबर जलाने की प्रक्रिया का प्रकाश के अपवर्तन और परावर्तन के आधार पर सचित्र विवेचन कीजिए।

4) न्यायदर्शन में ध्वनि प्रसारण के संदर्भ में तरंग गति के दो उदाहरण दीजिए।

5) ऊर्जा संरक्षण का नियम क्या है ?

अध्याय - 4

भारत में वनस्पति और पशु विज्ञान

4.1 प्रस्तावना –

वनस्पति जगत के बाह्य स्वरूप और आन्तरिक संरचना का जिस विधा में अध्ययन किया जाता है, उसे वनस्पति विज्ञान कहते हैं। वनस्पति का सामान्य अर्थ वन में उत्पन्न होने वाले वृक्षों, पौधों, पादपों, लताओं आदि से है। महाभारत में पुष्पों से रहित परन्तु फलों से युक्त को वनस्पति माना है।

4.2 वनस्पति विज्ञान का उद्भव –

सृष्टि के प्रारम्भ से ही मनुष्य ईंधन के लिए लकड़ी का प्रयोग, रहने के लिए घास का प्रयोग करता था। चिकित्सा के लिए औषधियों का प्रयोग, भोजन के लिए फलों का प्रयोग करता था। ऋग्वेद में सोम को बलवर्धक, ऊर्जा देने वाला तथा स्फूर्तिदायक माना गया है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में गुल्म – वृक्षायुर्वेद का वर्णन है। इन सभी में वनस्पति जीवन का विस्तृत वर्णन है जैसे – अन्कुरण, बीज-निर्धारण, प्ररोहण, वपन, सिंचन, रोगों से रक्षा, उपयुक्त भूमि, उपजाऊपन, मौसम, पत्ते, पुष्प, तना, फूल, फल आदि का अध्ययन।

बृहदारण्यक उपनिषद् में मनुष्य एवं वृक्षों में समानता बतायी गयी है। जिस प्रकार मनुष्य की त्वचा कटने पर रक्त निकलता है उसी प्रकार वृक्षों की त्वचा काटने पर रस निकलता है। पौधों में विकास एवं क्रियाएँ मनुष्य की ही तरह होती है। पौधों में क्रमिक विकास-शैशव, यौवन, सोना, जागना, चोट लगने पर खिन्नता रोग और गर्भाधान के लिए पोषण तत्त्व जरूरी होते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मानव जीवन के समान प्रकृति या वनस्पतियों का भी जीवन होता है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में वनस्पति जगत का अध्ययन कृषितन्त्र के अंतर्गत प्राप्त होता है ।

4.3 वृक्ष-वनस्पतियों का महत्त्व –

(1) ऐतरेय और कौषीतकि ब्राह्मण में वनस्पति को प्राण कहा गया है क्योंकि यह प्राणियों को श्वसन के लिए ऑक्सीजन देती है।

प्राणो वनस्पतिः। (कौषी.ब्रा. 12.7)

प्राणो वै वनस्पतिः। (ऐत. ब्रा. 2.4)

(2) यजुर्वेद में कहा गया है कि वृक्ष, प्रदूषण को दूर करते हैं, अतः इन्हें शमिता (शमनकर्ता, प्रदूषण निरोधक) कहा गया है।

वनस्पतिः शमिता। (यजु. 29.24)

(3) शतपथ ब्राह्मण में औषधि का अर्थ स्पष्ट किया है औषधि दोषों को समाप्त करती है ।

ओषं धयेति तत ओषधयः समभवन्। (शत. 2.2.4.5)

4.4 अन्कुरोद्भेद –

बीज में उर्वरा शक्ति पहले से ही विद्यमान रहती है जो कि पर्याप्त जल और ऊष्मा से अंकुर के रुप में दृष्टिगोचर हो जाती है। अन्कुरण के बाद मूल पाद आदि विकास का क्रम होता है। आधुनिक विज्ञान में इसे पौधे, रोप, नवोद्भिद् कहा जाता है।

4.5 वृक्षारोपण –

ऋग्वेद में वृक्ष रोपित करने, उनकी सुरक्षा करने के बारे में बताया गया है। क्योंकि ये जल के स्रोतों की रक्षा करते हैं।

1. **वृक्षों के लिए उपयुक्त स्थान एवं भूमि का चयन -**

वृक्ष लगाने के लिए कोमल (मुलायम) भूमि का चयन करना चाहिए । ऐसी भूमि में पहले तिल की बुआई कर, जब उसमें फूल आ जाये तब उस भूमि को साथ पुन जुताई कर उसमें गोबर की खाद डालना चाहिए ।

2. **लगाने योग्य वृक्ष –**

घर, वटिका में नीम, अशोक पुन्नाग, शिरीष, प्रियंगु (ककुनी) आदि वृक्षों को लगाना चाहिए क्योंकि यह सभी वृक्ष विपत्तियों को दूर करने वाले मंगलकारी माने जाते हैं ।

3. कलम वाले वृक्ष लगाने की विधि (ग्राफ्टिंग) -

बृहत्संहिता के श्लोक में कलम वाले वृक्ष लगाने की विधि (ग्राफ्टिंग) बताई गई है । कटहल, अशोक, केला, जामुन, बडहर, अनार, दाख, पालीवत, बिजौरा नीबूं, अतिमुक्तक इन वृक्षों की शाखाओं को गोबर से लिपकर कटे हूए विजातीय वृक्ष की मूल या शाखा पर कलम लगा सकते हैं ।

4. वृक्षारोपण करने की ऋतु –

बृहत्संहिता के श्लोक में बताया गया है कि विभिन्न प्रकार के वृक्षों को लगाने की ऋतु के बारे में उल्लेख किया है । अजातशाखा (कलम से भिन्न वाले) वृक्षों को लगाने के लिए शिशिर ऋतु (माद्य, फाल्गुन मास), कलम वाले वृक्षों को लगाने के लिए हेमन्त ऋतु (मार्गशीर्ष, पौष मास) तथा लम्बी शाखा वाले वृक्षों के लिए वर्षा ऋतु (श्रावण, भाद्रपद मास) को उपयुक्त माना है ।

5. वृक्षारोपण करने का नियम –

बृहत्संहिता के श्लोक में बताया गया है कि घी, खस, तिल, शहद, वायविडंग, दूध, गोबर इन सभी के मिश्रण को वृक्ष पर मूल से लेकर अग्र तक लेप कर वृक्ष को भूमि में लगाना चाहिए ।

6. वृक्षारोपण की विधि –

बृहत्संहिता के श्लोक में बताया गया है कि चंदन आदि से वृक्ष की पूजा कर वृक्षारोपण करना चाहिए ।

7. वृक्षों की सिंचाई –

बृहत्संहिता के श्लोक में बताया गया है कि लगाये हुए वृक्षों को ग्रीष्म ऋतु में प्रातः एवं संध्या के समय, शीत ऋतु में एक दिन बाद, वर्षा ऋतु में भूमि सूखने पर सिंचाई करना चाहिए ।

8. वृक्ष लगाने का क्रम –

बृहत्संहिता के श्लोक में बताया गया है कि एक वृक्ष से दूसरा वृक्ष 20 हाथ दूरी पर रोपित करना चाहिए ।

4.6 पादप रोगोपचार –

वाराहमिहिरकृत बृहत्संहिता और अग्निपुराण में वृक्षों के उपचार का उल्लेख किया गया है। जिस प्रकार मनुष्य का शरीर रोगों से पीड़ित हो जाता है, उसी प्रकार वृक्षो में भी रोग उत्पन्न होते हैं।

वाराहमिहिर और कश्यप का कथन है कि अधिक शीत, धूप और तीव्र वायु से वृक्षों को रोग हो जाते हैं। पत्ते पीले पड़ जाते हैं, अन्कुर नही लगते डालियाँ सूख जाती है और रस टपकने लगता है ।

रोगी वृक्ष की चिकित्सा के लिए उसके रुग्ण अंग को काटकर उस पर वायविड्ङ, घी और पंक (कीचड़) को मिलाकर वृक्ष पर लेप करना चाहिए। फिर दूध – मिश्रित जल से सिंचित करना चाहिए।

4.7 वैदिक वाङ्मय में जीवों का वर्गीकरण –

पशु-पक्षी दोनों को सम्मिलित करते हुए कई प्रकार के वर्गीकरण किए गये है।

क) 2 प्रकार के पशु –

1) ग्राम्यः गाँव में रहने वाले या पालतू।

2) आरण्यः जंगल में रहने वाले।

ख) अथर्ववेद में तीन प्रकार के पशुओं का वर्णन है।

ग) शतपथ ब्राम्ह्मण में 5 प्रकार के पशुओं का वर्णन है।

1) पुरुष 2) अश्व 3) गाय 4) अज (बकरा) 5) अवि (भेड़)

4.8 जन्तुओं का वैज्ञानिक वर्गीकरण –

2 भागों में बाँटा गया है।

1. **प्रोटोजोआ** – इसमें एककोशिय जीव आते हैं। इस समुदाय में लगभग 50000 जातियाँ पाई जाती हैं। जैसे – अमीबा
2. **मेटोजोआ** – इसमें बहुकोशीकीय जीव आते हैं। जिनके शरीर का निर्माण कई कोशिकाओं से मिलकर हुआ है।

4.9 पशु चिकित्सा -

प्राचीन समय में पशु चिकित्सा विज्ञान को मृगायुर्वेद के नाम से भी जाना जाता था। हाथी और घोड़े की चिकित्सा सम्बन्धी विज्ञान को हस्त्यायुर्वेद (गजायुर्वेद) एवं अश्वायुर्वेद कहा जाता था।

प्रश्नावली

1) वृक्ष – वनस्पतियों का क्या महत्त्व है ?

2) पौधों की उपचार प्रणाली बताइए।

3) वनस्पतिजगत की प्राचीनता स्पष्ट कीजिए।

4) अंकुरोद्भेद से क्या तात्पर्य है ?

5) पौधों के रोगग्रस्त होने के किन्ही तीन कारणों का उल्लेख कीजिए।

अध्याय - 5

भारत में रसायन शास्त्र

5.1 वैदिक वाङ्मय में धातु और खनिज –

यजुर्वेद में पत्थर (अश्मन्), मिट्टी (मृतिका), बालू (सिकता), हिरण्य (सोना), अयस् (लोहा अथवा काँसा), श्याम (ताँबा), लोह (लोहा), सीस (सीसा और त्रपु) राँगा, वंग या टीन का उल्लेख है।

यजुर्वेद में अयस्ताप का उल्लेख है जो लोहे के खनिज को लकड़ी कोयला के साथ तपाकर धातु तैयार करता है।

अयस्क को तपाकर धातु तैयार करने की और यह संकेत अथर्ववेद में भी है। हरित (सोना), रजत (चाँदी), अयस् (सोना) तीन शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

अथर्ववेद में सीसा धातु का उल्लेख मिलता है इसके ''दधत्वं सीसम्'' सूक्त से प्रतीत होता है। सीसे से बने छर्रे युद्ध में काम आते थे।

5.2 अयस्क एवं धातुकर्म –

जिस रूप में धातुएँ पृथिवी से उत्खनन की जाती है, उसे अयस्क कहते हैं। ऋग्वेद में अयस् (लोह) धातु के निष्कर्षण विधि को बताया है। वे खनिज या यौगिक जिनसे धातुएँ प्राप्त की जा सके, अयस्क कहलाते हैं। इन अयस्कों से धातु के निष्कर्षण की विधि को धातुकर्म कहते हैं। विभिन्न धातुओं के अयस्कों के नाम हमारे प्राचीन ग्रन्थों में पाए गए है । जैसे – हर्बल (AS_2O_3) आर्सेनिक ऑक्साइड तथा शिखिग्रीव ($CuSo_4$) या कॉपर सल्फेट या नीला थोथा। जो क्रमशः आर्सेनिक एवं ताँबे के अयस्क है।

ताँबे के अयस्क $CuSo_4$ तूतिया या कॉपर सल्फेट अकार्बनिक यौगिक है जिसे नीला थोथा से शुद्ध ताँबे के निष्कर्षण की विधि रसतरंगिणी में दी गई है। नीले थोथा को जल में घोलकर उसमें लौह चूर्ण डालने पर बर्तन की तलहटी पर शुद्ध ताँबा एकत्र हो जाता है, जिसे सरलता से अलग किया जा सकता है।

रासायनिक समीकरण

$$CuSo_4 + Fe \text{ --------> } FeSo_4 + Cu$$

कॉपर सल्फेट   आयरन   फेरस सल्फेट   कॉपर

रसायन सार नामक ग्रन्थ में शिखिग्रीव विलयन को लोहे के बर्तन में रखकर छोड़ देते हैं इस प्रकार प्राप्त ताँबे के चूर्ण का द्रव्यमान कुल लिए गए कॉपर सल्फेट के द्रव्यमान का 20 प्रतिशत होता है।

5.3 रसविद्या –

टी.जी. काले द्वारा रचित 'रसमंजरी' नामक मराठी पुस्तक में प्राचीन रसायनशास्त्र के 127 ग्रंथो की सूची दी गई है, उनमें से कुछ कृतियाँ निम्नानुसार है –

1. नागार्जुन - रसरत्नाकर
2. वाग्भट्ट – अष्टांगहृदय, रसरत्नसमुच्चय
3. गोविंदाचार्य - रसहृदयतन्त्र, रसार्णव
4. सोमदेव – रसार्णवकल्प, रसेंद्रचूणमणि

रसार्णव नामक ग्रंथ में आठ महारसों का वर्णन किया है, जो इस प्रकार है – माक्षिक, विमल, शिलाजीत, चपल (पारा), रसक, सम्यक (तूतिया), दरद और स्त्रोमांडजन।

पारे की रुपान्तरण प्रक्रिया

नागार्जुन ने पारे को शुद्ध करने और पारे के औषधीय प्रयोग की विधियाँ बताई है। अपने ग्रंथों में नागार्जुन ने विभिन्न धातुओं का मिश्रण तैयार करने, पारा तथा अन्य धातुओं का शोधन करने, महारसों का शोधन तथा विभिन्न धातुओं को स्वर्ण या रजत में परिवर्तित करने की विधि बतायी है।

पारद (पारा) भस्म निर्माण विधि –

रासायनिक क्रिया द्वारा धातु के हानिकारक गुण दूर करके उन्हें राख में बदलने पर भस्म का निर्माण होता है।

योगचिन्तामणि में पारद-भस्म बनाने की विधि बतायी गई है।

रस रत्न समुच्चय में मुख्य रस माने गए निम्न रसायनों का उल्लेख किया गया है -

(1) महारस – इसमें 8 पदार्थ हैं अभ्रक (पाइराइट), वैक्रांत, भाषिक, विमला (लौह पाइराइट), शिलाजीत, सास्यक (कॉपर सल्फेट), चपला (बिस्मथ), रसक (कैलेमाइन या जस्ता)

(2) उपरस – गन्धक, गैरिक, कसीस (हरा थोथा) , मनःशिला, अंजन, कंकुष्ठ, फिटकरी (कांक्षी), हरताल

(3) साधारण रस – कोयला, गौरीपाषाण (आर्सेनिक), नवसार, वराटक, अग्निजार, लाजवर्त, गिरि सिंदुर, हिंगुले (सिनेबार), मुदड़ि श्रंगकम्

(4) धातु – स्वर्ण, रजत, ताम्र, लौह, नाग (लेड), वंग (टिन), यशद् (जस्ता)

विभिन्न प्रकार के विष, अम्ल तथा क्षार का वर्णन दिया गया है तथा धातुओं की भस्मों का वर्णन किया गया हैं।

रस रत्न समुच्चय अध्याय 7 में प्रयोगशाला या रसशाला का वर्णन दिया गया हैं। इसमें 32 से अधिक यन्त्रों का उपयोग किया जाता था। इनमें से कुछ प्रमुख है -

1) **कोष्ठीयन्त्र** –

सौलह अंगुल चौड़ी और एक हाथ लम्बी तथा समान आकार की एक मूषा बनवाते हैं इसे कोष्ठीयन्त्र कहते हैं। यह यन्त्र धातुओं और रत्नों के सत्वादि को (सार) निकालने में उपयोगी है।

2) **धूपयन्त्र** –

आठ अंगुल चौड़ा और आठ अंगुल ऊँचा लोहे का पात्र लेते हैं। उसके मध्य के नीचे दो अंगुल चौड़े स्थान में एक आधार बनवा लिया जाता है और इस आधार पर पतली और तिरछी लोहे की छड़े (शलाका) टेढ़ी रख दी जाती है। इन शलाकाओं के ऊपर छोटे-छोटे कण्टुक वेध्य सोने के पत्र रखे जाते हैं। लोहपात्र में पहले से ही गंधक, हरताल आदि की कज्जली डाल देते हैं। इस लोहपात्र को एक दूसरे से ढ़क देते हैं। पात्र को चूल्हे पर चढ़ाते हैं और नीचे से आग लगा देते हैं। कज्जली के धूम से प्रभावित होकर सोने के पत्र काले पड़ जाते हैं, ऐसे मृत स्वर्ण पत्रों मिश्रित पारद शीघ्रता से भक्षण कर सकता है। भक्षण किए हुए पत्र पारद में शीघ्र ही द्रुत हो जाते हैं।

3) **डमरुयन्त्र –**

इस उपकरण की आकृति डमरु के समान होती है। पारद की भस्म बनाने में यह उपकरण उपयोगी है।

5.4 द्रव्य, द्रव्य के प्रकार, द्रव्य का स्वरूप –

आधुनिक रसायन विज्ञान के अनुसार –

तत्त्व – जिसके अणु एक ही प्रकार के परमाणुओं से बने होते हैं।

यौगिक – जिसके अणु विभिन्न प्रकार के परमाणुओं के निश्चित अनुपात से मिलकर बने होते हैं।

मिश्रण – जो दो या दो से अधिक पदार्थों को किसी भी अनुपात में मिलाने से बनता है।

महर्षि कणाद का सिद्धान्त –

पृथिवी, जल, तेज और वायु इन चारों का मूल तत्त्व परमाणु है। परमाणु वह सूक्ष्मतम अवयव है, जिसे और विभाजित नहीं किया जा सकता है। खिड़की से आते हुए सूर्य के प्रकाश में सूक्ष्म कण दिखाई देते हैं, उनका षष्ठतम भाग परमाणु है।

परमाणुओं की आकर्षण शक्ति – ऋग्वेद के इस मन्त्र में उल्लेख है कि प्रत्येक परमाणु दूसरे परमाणुओं को सदा आकृष्ट करता है।

5.5 धातुविज्ञान –

1) **धातुओं में टाँका लगाना** – गोपथब्राह्मण, जैमिनीय उपनिषद्, ब्राह्मण और छान्दोग्य उपनिषद् में धातुओं को जोड़ने या टाँका लगाने की विधि दी गई है। गोपथब्राह्मणम् के अनुसार लवण (क्षार) से सोने को सोने से, चाँदी को चाँदी से, लोहे को लोहे से जोड़ा जा सकता है।

क्षार पदार्थ को मृदु बना देता है अतः उससे धातुएँ एक – दूसरे से जुड़ जाती हैं।

2) **काँसा धातु से अग्नि –** जब सूर्य उपर की ओर जाता है, तब हम यदि काँसा धातु या सूर्यकान्त मणि को साफ करके सूर्य के सामने (फोकस) रखें तो उससे निकलने वाले ताप से पास में रखा हुआ सूखा गोबर जल जाता है। यदि रूई रखी होगी तो वह भी जल जाएगी।

3) **चाँदी शुद्ध करना –** चाँदी, सीसा के साथ गलाने और भस्मों के साथ गलाने पर शुद्ध होती है।

4) **धातु संक्षारण –** याज्ञवल्कक्य स्मृति में संक्षारित धातुओं को अम्ल अथवा क्षार की सहायता से शुद्ध करने का वर्णन दिया है।

रसार्णव में यह भी बताया कि वंग, सीसा, लोहा, ताँबा, रजत और स्वर्ण में स्वतः संक्षारण की प्रकृति इसी क्रम में घटती जाती है जो आधुनिक रसायन शास्त्र के संगत है।

संक्षारण से वस्तुओं को सुरक्षित रखने के लिए वाराहमिहिर की बृहत् संहिता में वज्र लेप एवं वज्र संघट्ट के प्रयोग के बारे में बताया है। वज्र लेप को वानस्पतिक एवं वज्र संघट्ट को जैविक घटकों से निर्मित करने की विधियों का वर्णन है।

5) **धातु से विस्फोटक का निर्माण –** शुक्रनीति में कोयला, गंधक, शोरा, लाल आर्सेनिक, पीत आर्सेनिक, ऑक्सीकृत सीसा, सिन्दूर, इस्पात का चूरा, कपूर, लाख, तारपीन एवं गोंद के भिन्न – भिन्न अनुपातों के मिश्रण को गर्म कर अनेक प्रकार के विस्फोटकों के निर्माण के बारे में बताया है।

6) **मिश्रधातु –** दो या दो से अधिक धातुओं को मिलाकर मिश्रधातु बनाई जाती है।

पीतल मिश्रधातु लगभग सभी उत्खनन स्थलों से प्राप्त हुई है तथा वेदों में भी इसका उल्लेख मिलता है। जस्ता धातु सुवर्णकार है क्योंकि ताँबा धातु के साथ मिलकर पीतल, मिश्रधातु का निर्माण करती है।

पीतल – ताँबा (कॉपर) + जस्ता (जिंक)

जस्ता एवं शुल्व (ताँबा) (1:3) में मिलाकर गर्म किया जाये तो पीतल मिश्रधातु बनती है ।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चार प्रकार के सिक्के धातुएँ वर्णित है – मशकम, अर्धमशकम, काकनी एवं अर्धकाकनी। ये सभी रजत (चाँदी), ताँबा, लोहा, वंग और सीसा अथवा एन्टिमनी को विभिन्न अनुपातों से मिलकर बनाई जाती थी। इसी प्रकार चाँदी एवं पारद की भी कई वर्णों वाली मिश्रधातु बनाई जाती थी। चरकसंहिता के अनुसार मूर्ति निर्माण में पञ्चलोहा का प्रयोग किया जाता था जिसमें ताँबा, वंग, सीसा, लोहा एवं रजत का मिश्रण होता था। रसरत्न समुच्चय के अनुसार मूर्ति निर्माण में रजत के स्थान पर पीतल का प्रयोग किया जाता था।

मन्दिरो में घण्टी निर्माण के लिए तांबा और टिन (वंग) विभिन्न अनुपातों में मिलाए जाते थे। वर्तमान में भी बेल मेटल के निर्माण के लिए ताँबा (80 प्रतिशत) एवं टिन (20 प्रतिशत) मिलाया जाता है। कुछ अन्य धातुएँ थोड़ी मात्रा में मिलायी जा सकती है।

काँसा – ताँबा + टिन

संस्कृत वाङ्मय में उल्लेख है कि रासायनिक प्रक्रियाओं के सम्पादन के लिए आवश्यक रसायन एवं अभिकर्मक वानस्पतिक तथा जैविक स्त्रोतो से प्राप्त किए जाते थे। उत्प्रेरक, अम्ल, क्षारों के स्त्रोत भी जैविक थे। कृषि कार्य में कीटो को नष्ट करने के लिए जैविक रसायन का प्रयोग किया जाता था जो आधुनिक रसायन की अपेक्षा कम प्रदूषणकारी था।

7) धातुओं का शुद्धिकरण –

स्थिरता की दृष्टि से धातुओं का क्रम निम्न है –

सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, टिन, सीसा इनमें सोना सबसे अधिक अक्षय है और लोहा, टिन, सीसा में जंग शीघ्र लगती है ।

प्रश्नावली

1) धूपयन्त्र रसशाला उपकरण का नामान्कित चित्र बनाकर समझाइए ।
2) महर्षि कणाद का सिद्धान्त लिखिए ।
3) मिश्रधातु किसे कहते हैं ? दो मिश्रधातु के नाम बताइए ।
4) काँसा धातु से अग्नि उत्पन्न करने की क्रिया को समझाइए ।
5) बेल मेटल क्या है ?

अध्याय - 6

समुद्रयान और नौका निर्माण विज्ञान

6.1 प्रस्तावना –

भारत में समुद्रयान और नौकाओं के निर्माण की कला अति प्राचीन रही है। वैदिक एवं संस्कृत वाङ्मय में समुद्र यात्रा का वर्णन मिलता है। महर्षि अगस्त्य को समुद्री द्वीप – द्वीपान्तरों की यात्रा करने वाले के रूप में संस्कृत वाङ्मय में बताया गया है। भारतीय नौ सेना का ध्येय वाक्य है ''**शन्नो वरूणः**'' अर्थात् जल देवता हम पर कृपा करें ।

6.2 वैदिक एवं संस्कृत वाङ्मय में नौकाओं का वर्णन –

वेद नावः समुद्रियः। (ऋग्वेद 1.25.7)

यजुर्वेद और अथर्ववेद में भी उल्लेख है कि विशाल समुद्री जहाज होते थे और उनमें सौ से अधिक पतवार (अरित्र) लगी होती थी।

सुनावमा रुहेयमस्त्रवन्तीमनागसम् । शतारित्रा ꣡ स्वस्तये ॥

(यजु. 21.7)

सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये।

(अथर्व. 17.1.26)

वाल्मीकि रामायण के अयोध्या काण्ड में भी ऐसी बड़ी नावों का उल्लेख है जिसमें सैकड़ों योद्धा सवार रहते थे।

नावां शतानां पञ्चानां कैवर्त्तानां शतं शतम् ।

सन्नद्धानां तथा यूनान्तिष्ठन्त्वित्यभ्यचोदयत्॥

(रामायण)

महाभारत में यन्त्र चालित नाव का वर्णन मिलता है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में नावों के प्रबंधन के जानकारी मिलती है तथा 5वीं सदी के वाराहमिहिर कृत बृहत् संहिता में जहाज निर्माण के बारे में बताया है।

6.3 प्राचीन ग्रन्थ युक्तिकल्पतरु में नौका निर्माण –

11वीं सदी के राजा राज भोज कृत् युक्तिकल्पतरु में जहाज निर्माण पर प्रकाश ड़ाला हैं।

अथ निष्पदयानोद्धेशः

बिना पहिए वाला वाहन।

नौकाद्यं निष्पदं यानं तस्य लक्षणामुच्यते।

(युक्ति. कल्प. नौयानयुक्ति 76)

अश्वादिकन्तु यद्यानं स्थले सर्वं प्रतिष्ठितम् ।

जले नौकैव यानं स्यादतस्तां यत्नतो वहेत् ॥

(युक्ति. कल्प. नौयानयुक्ति 80)

बिना पहिए वाला वाहन अर्थात् नाव की ओर संकेत है। वह अश्वयान की तरह जल में प्रतिष्ठित है।

1) **जहाज निर्माण का समय** –

जहाज निर्माण के लिए शुभ तिथि, चन्द्रमा का योग देखते हैं। जब चर लग्न हो, मंगल, मकर राशि एवं अन्य राशियों से छठा हो।

जब चन्द्रमा पूर्वी क्षितिज में तथा उसकी किरणें अभी तक शीर्षबिन्दु तक न पहुँची हो जब सूर्य अपनी विस्थापित स्थिति में धनिष्ठा के साथ सम्मिलित हो। तारा चन्द्रमा और तिथि का यह संयोग यात्रा करने के लिए शुभ होता है।

2) **जहाज निर्माण के लिए काष्ठ (लकड़ी)** –

वृक्षायुर्वेद, पादप विज्ञान में लकड़ी के 4 प्रकार को बताया गया है।

लकड़ी (काष्ठ) का प्रथम प्रकार की काष्ठ हल्की, कोमल एवं आसानी से जुड़ जाता है। काष्ठ का दूसरा प्रकार जो हल्का कठोर एवं आसानी से नहीं जुड़ता है।

काष्ठ की तीसरा प्रकार कोमल एवं भारी होता है । काष्ठ का चौथा प्रकार कठोर एवं भारी है।

मिश्रित काष्ठ 2 तरह के गुणों को बताती है।

राजा भोज के अनुसार तेज बहाव वाले जल को पार करने वाली नाव को हल्की एवं कठोर लकड़ी से बनाना चाहिए।

राजा भोज के अनुसार हल्की, कोमल एवं आसानी से जुड़ने वाली की काष्ठ से निर्मित नाव धन एवं प्रसन्नता देती है अर्थात् सफर में सुखदायक होती है।

दो प्रकार की काष्ठ से निर्मित नाव लाभदायक नही होती है । वह लंबे समय तक नहीं चलती एवं जल में डूब जाती हैं।

3) समुद्री जहाज में लोहे की कील को बांधना –

समुद्री जहाज से लोहे कील को नही बांधना चाहिए क्योंकि लोहा चुम्बकीय तरंगों को आकर्षित करता है ऐसा करना हानि पहुँचा सकता है।

4) **नाव का वर्गीकरण** – अ) सामान्य ब) विशेष

नौका को 2 भागों में विभाजित किया गया है। सामान्य एवं विशेष नौका

5) सामान्य नौका के अन्य नाम, प्रकार एवं माप –

सामान्य नाव के प्रकार -

वह नाव जिसकी लम्बाई एक राजहस्त एवं चौड़ाई लम्बाई की एक चौथाई एवं ऊँचाई चौड़ाई के समान हो वह क्षुद्रा कहलाती है।

दस प्रकार की नाव का उल्लेख है।

क्षुद्रा (अल्पार्थक), मध्यम, भीम, चपला, पटला, अभया, दीर्घा, पत्रपुटा, गर्भरा, मन्थरा। वह नाव जिसकी लम्बाई एक राजहस्त की आधी हो एवं चौड़ाई, लम्बाई की आधी हो एवं ऊँचाई, लम्बाई की एक तिहाई हो मध्यमा कहलाती है।

इन 10 नावों की मापन इकाई को राजहस्त कहते हैं। इन नावों की लम्बाई में क्रमानुसार एकान्तर क्रम में लम्बाई की आधी की वृद्धि एवं चौड़ाई, ऊँचाई दी गई लम्बाई की आधी हो।

6) **विशेष नाव –**

विशेष प्रकार की नाव विशेष नाव लोहे की परतों से तथा ताँबे से बनायी जाती है। ये दो प्रकार की होती है - लंबाई एवं ऊँचाई के अनुसार ।

राजा भोज द्वारा कृत युक्तिकल्पतरु में विशेष नावों के माप एवं नावों पर चित्रकला को भी बताया है। कक्ष वाली नावों के बारे में बताया है। मौसम अनुसार नावों का प्रयोग भी बताया हैं। दीर्घ-पोत में काय अथवा नौका का स्थूल भाग सकरा और लम्बा होता है तथा उन्नत पोत में यह काय ऊँचा होता है। कुटी,कोष्ठ, शालिका, शाला और स्थल इत्यादि विभिन्न प्रकार की केबिनों (कक्षों) की पोत में स्थिति तथा उनकी लम्बाई आदि के आधार पर इन्हें तीन वर्गों में बाटा जाता है।

1. **राज्य** - कोष और अश्वों को लाने जाने के लिए प्रयुक्त कुटियाँ
2. **मध्यमंदिर** - जिसमें नौकापृष्ठ के मध्यभाग में ही केबिन होते हैं, ऐसे पोत मनोरंजन एवं हास-विलास के लिए प्रयुक्त होते थे।
3. **अग्रमंदिर** – इसमें डेक के अग्रभाग में केबिन बने होते थे, इनका प्रयोग युद्ध के लिए किया जाता था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रचीन भारत में नौका एवं पोत निर्माण का कार्य उच्चकोटि का था तथा इन पोतों के कई प्रकार थे।

प्रश्नावली

1. विशेष नाव कितने प्रकार की होती है ?
2. ऋग्वेद में वर्णित समुद्रयान, पोत निर्माण का उल्लेख कीजिए ।
3. युक्तिकल्पतरू में वर्णित जहाज निर्माण के लिए उपयोग की गयी काष्ठ (लकड़ी) के बारे में विस्तारपूर्वक समझाइए ।

अध्याय - 7

शुल्बसूत्र एवं मिति

7.1 प्रस्तावना –

शुल्ब अर्थात् धागा, रस्सी। रस्सी की सहायता से विभिन्न प्रकार की वेदि अग्निचिति, मण्ड़प इत्यादि का विन्यास करने की रीतियाँ सूत्ररूप में है जिसे शुल्बसूत्र कहते हैं।

7.2 शुल्बसूत्र के प्रकार –

अब तक 8 शुल्बसूत्र ज्ञात किए जा चुके है। कृष्ण यजुर्वेद में 7 शुल्बसूत्र है। बोधायन, आपस्तम्भ, सत्याषाढ, वाधुल, मानव, मैत्रायणी और वाराह शुक्ल यजुर्वेद के अंतगर्त कात्यायन शुल्बसूत्र आठवाँ शुल्बसूत्र है।

इन शुल्बसूत्र में बौधायन शुल्बसूत्र सबसे बड़ा एवं प्राचीन है।

7.3 शुल्बसूत्रों का प्रयोग

वेदि के निर्माण में वेदि के पूर्व और पश्चिम की तरफ होने वाली भुजाएँ परस्पर समांतर होनी चाहिए। इसलिए पूर्व और पश्चिम की तरफ होने वाली भुजाएँ वेदि के मध्य भाग से जाने वाली सममिति अक्ष रेखा समकोण में होनी चाहिए। बौधायन शुल्बसूत्र में समकोण की जानकारी एवं पाइथागोरस प्रमेय की जानकारी प्राप्त होती है।

$$(\text{कर्ण})^2 = (\text{लम्ब})^2 + (\text{आधार})^2$$

यज्ञविषयक कला श्रौतसूत्र में दी है और यज्ञ के लिए वेदि, चिति, मंड़प निर्माण का विधान शुल्बसूत्र में दिया है।

7.4 वेदि, अग्निचिति और मण्डप –

वेदि –

वेदि के तीन प्रमुख प्रकार होते हैं। यजमान की वेदि प्राग्वंश मण्डप में होती है। इसे दार्शिति वेदि भी कहते हैं। क्योंकि दर्शपूर्णमास यज्ञ में इसका उपयोग करते हैं। उत्तर वेदि यज्ञक्षेत्र के पूर्व की ओर होती है और तीसरी महावेदि।

1 अंगुल = 1.9 सेमी

अग्निचिति –

सोमयज्ञ में अलग – अलग प्रकार की अग्निचिति बनाते हैं। श्येनचिति, अलजचिति और कंकचिति पक्षियों के आकार की होती हैं।

त्रिभुजाकार (प्रउग), समभुज चतुर्भुज के आकार की, द्रोण के आकार की, रथ के पहिए के आकार की वृत्ताकार, कछुए के आकार की चिति।

मण्डप –

मण्डप बाँस या कपड़े का बनाते हैं। सोमयज्ञ के लिए 5 मण्डपों की आवश्यकता होती है।

1) **प्राग्वंश मण्डप –** यह क्षेत्र के पश्चिम की तरफ यह मण्डप होता है। इसके छत का धरण स्वरुप बांस पूर्व-पश्चिम दिशाओं की तरफ होता है। बांस का अगला सिर पूर्व की तरफ रखते हैं। इसलिए इसे प्राग्वंश मण्ड़प कहते हैं।

इसकी पूर्व - पश्चिम लम्बाई 16 प्रक्रम (480 अंगुल , 9.12 मी .) या 12 प्रक्रम (6.84 मी.) और दक्षिणोत्तर चौड़ाई 12 या 10 प्रक्रम (6.84 मी. या 5.70 मी.) रखते हैं । मानव शुल्बसूत्र के अनुसार यह मण्डप वर्गाकार है और इसके भुजाओं की लम्बाई 10 अरत्नि (240 अंगुल, 4.56 मी.) होती है । प्राग्वंश मण्डप की पूर्व सीमा महावेदि के पश्चिम भुजा से 90 अंगुल (1.71 मी.) दूरी पर रखते हैं ।

2) **उदग्वंश मण्ड़प या सदस –** यह यज्ञ के ऋत्विजों का प्रमुख कार्य स्थान होता है इनकी धिष्ण्याएँ यहाँ होती है। यह मण्ड़प प्राग्वंश मण्ड़प के पूर्व की तरफ और महावेदि की पश्चिम भुजा के पास होता है। इसके छत का धर उत्तर दक्षिण रखते हैं और अगला सिर उत्तर की तरफ होने की वजह से इसे उदग्वंश मण्ड़प कहते हैं।

इसकी दक्षिणोत्तर लम्बाई 27 अरत्नि (648 अंगुल , 12.39 मी.) या 18 अरत्नि (432 अंगुल , 8.21 मी.) और पूर्व - पश्चिम चौड़ाई 10 पद (150 अंगुल , 2.85 मी.) या 10 प्रक्रम (300 अंगुल , 5.70 मी.) रखते हैं । यह नाप बौधायन शुल्बसूत्र के अनुसार है । आपस्तम्ब शुल्बसूत्र के अनुसार सदस की लम्बाई 27 या 18 अरत्नि और चौड़ाई 9 अरत्नि (216 अंगुल ,

4.90 मी.) होती है । मानव शुल्बसूत्र में दी हुई ना आपस्तंब शुल्बसूत्र के अनुसार हैं । सदस की पश्चिम सीमा महावेदि की पश्चिम भुजा से 1 प्रक्रम (30 अंगुल , 57 से.मी.) दूरी पर होती है। इसे पूर्व और पश्चिम की ओर दरवाजा रखते हैं । इस मण्डप के पूर्व और पश्चिम की तरफ होने वाले खंभे ऊँचाई में छोटे होते हैं । इतने छोटे रखते हैं कि छत जमीन से 64 अंगुल ऊँचाई पर होगा । जिस यजमान को अच्छी वर्षा होने की अपेक्षा है इसके सोमयज्ञ में छत की ऊँचाई इसके नाभि तक (64 अंगुल) रखें ऐसा नियम दिया है ।

3) हविर्धान मण्ड़प – सोम वल्ली और अन्य हव्यद्रव्य दो गाड़ियों में रखकर वे इस मण्ड़प में खड़ी करते है। इन गाड़ियों को हविर्धान कहते हैं।

सदस के पूर्व सीमा से हविर्धान मण्डप की पश्चिम सीमा 4 प्रक्रम (120 अंगुल , 2.28 मी.) दूरी पर होती है । यह मण्डप वर्गाकार होकर इसकी भुजाओं की लम्बाई 10 या 12 प्रक्रम होती है । हविर्धान मण्डप की पूर्व सीमा से उत्तरवेदि 6/2 प्रक्रम (195 अंगुल , 3.70 मी.) दूरी पर होती है ।

4) आग्निध्रीय और मार्जालीय मण्डप – हविर्धान मण्डप के उत्तर की तरफ आग्निध्रीय और दक्षिण की तरफ मार्जलीय मण्ड़प होता हैं।

इन मण्डपों में एक धिष्ण्या होती है । आग्निध्रीय मण्डप का दरवाजा दक्षिण की तरफ और मार्जालीय का उत्तर की तरफ रखते हैं । दोनों मण्डप वर्गाकार होकर उनकी भुजाएँ 5 अरत्नि (120 अंगुल, 2.28 मी.) लम्बी होती है मानव शुल्बसूत्र के अनुसार मार्जालीय मण्डप नहीं होता है और आग्निद्रीय वर्गाकार मण्डप की लम्बाई 6 अरत्नि (144 अंगुल, 2.73 मी.) होती है। यज्ञ क्षेत्र में चात्वाल और उपरव होते हैं ।

- **चात्वाल** : -

उत्तर वेदि के कुछ दूरी पर गड़ढा खोदते हैं । उत्तर वेदि के निर्मिति के लिये मिट्टी इस गड़ढे से लेते हैं । यह वर्गाकार होकर उसकी लम्बाई एक शम्या (32 अंगुल , 60.8 से.मी.) या 36 अंगुल होती है ।

- **उपरव** : - हविर्धान मण्डप में प्राची के दक्षिण की तरफ , प्राची के एक प्रक्रम दूरी पर उपरव के गड्ढे खोदते हैं । उपरव के गड्ढे 24 अंगुल लम्बाई के वर्गाकार के कोणों पर 12 अंगुल व्यास के खोदते हैं । वे जमीन के नीचे नाली से जोड़ते हैं । यह स्थान है जहाँ सोमवल्ली से सोमरस की निर्मिति करते हैं । मानव शुल्बसूत्र के अनुसार इन गड्ढों का व्यास 9 अंगुल भी रख सकते हैं ।

वेदों में अनेक प्रकार के यज्ञों का वर्णन मिलता है, किन्तु उनमें पाँच यज्ञ ही प्रधान माने गये हैं-

1. अग्निहोत्रम् 2. दर्शपूर्णमास 3. चातुर्मास्य 4. पशुयाग 5. सोमयज्ञ

1. अग्निहोत्र यज्ञ

अग्निहोत्र एक वैदिक यज्ञ है। इस यज्ञ का वर्णन यजुर्वेद में मिलता प्रात:कालीन और सायंकालीन संध्याओं के उपरांत अग्निहोत्र करके पूजा से उठने का विधान है। यज्ञ के लिए जंगल से समिधा लाकर 'शुल्बसूत्र' (ज्यामिति) के अनुसार यज्ञ की वेदि का निर्माण कर अग्निहोत्र करने की परम्परा है ।

2. दर्शपूर्णमास यज्ञ

दर्शपूर्णमास यज्ञ हिन्दू धर्म में किये जाने वाला एक धार्मिक अनुष्ठान है। अमावस्या और पूर्णिमा को होने वाले यज्ञ को दर्श और पूर्णमास कहते हैं। इस यज्ञ का अधिकार सपत्नीक होता है। इस यज्ञ का अनुष्ठान आजीवन करना चाहिए। यदि कोई जीवन भर करने में असमर्थ है तो 30 वर्ष तक करना चाहिए।

3. चातुर्मास्य यज्ञ

चार महीनों में होने वाला एक वैदिक यज्ञ है, जो एक प्रकार का पौराणिक व्रत है, जिसे चौमासा भी कहा जाता है। कात्यायन श्रौतसूत्र में इसके महत्व के बारे में बताया गया है। फाल्गुन से इसका आरंभ होने की बात कही गई है।इसका आरंभ फाल्गुन, चैत्र या वैशाख की पूर्णिमा से हो सकता है और आषाढ़ शुक्ल पक्ष द्वादशी या पूर्णिमा पर इसका

उद्यापन करने का विधान है। इस अवसर पर चार पर्व हैं- वैश्वदेव, वरुणघास, शाकमेघ और सुनाशीरीय। पुराणों में इस व्रत के महत्व के बारे में विस्तारपूर्वक बताया गया है।

4. पशु यज्ञ

प्रति वर्ष वर्षा ऋतु में या दक्षिणायन या उत्तरायण में संक्रान्ति के दिन एक बार जो पशु-याग किया जाता है, उसे निरूढ पशु यज्ञ कहते हैं।

5. सोम यज्ञ

सोमलता द्वारा जो यज्ञ किया जाता है, उसे सोम यज्ञ कहते हैं। यह वसन्त में होता है। यह यज्ञ एक ही दिन में पूर्ण होता है। इस यज्ञ में 16 ऋत्विक् ब्राह्मण होते हैं। अमावस्या और पूर्णिमा को होने वाले यज्ञ को दर्श और पूर्णमास कहते हैं! इस यज्ञ का अधिकार सपत्नीक को होता है। इस यज्ञ का अनुष्ठान आजीवन करना चाहिए। यदि कोई जीवन भर करने में असमर्थ है तो 30 वर्ष तक करना चाहिए।

7.5 दिशाएँ निश्चित करने की पद्धतियाँ –

1) सूर्य की सहायता से दिशाएँ निश्चित करना –

यज्ञ मण्डप बनाने के पहले दिशा का ज्ञान होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।प्राचीन कात्यायन शुल्बसूत्र में प्राची एवं उदिची साधन कि क्रिया माध्यम सही दिशा प्राप्त ज्ञात करते हैं।

7.6 शुल्बसूत्र में प्रयुक्त माप –

1 अणूक = 30 अंगुल, 1 उर्वस्थि = 20 अंगुल

1 नाभि = 64 अंगुल, 1 आस्य = 96 अंगुल

1 पिशिल = 12 अंगुल, 1 कृष्णल = 3 भव

1 माप = 3 कृष्णल, 1 निष्क = 4 कृष्णल

1 अर्व = 6 अंगुल

7.7 भौमितिक परिकल्पना –

1) रस्सी का विभाग करना –

प्रमाणमात्रं.... रज्जुमुभयतः पाशां करोति।

आपस्तम्ब शुल्वसूत्र (1.13)

रस्सी के दोनों सिरों को मध्य बिन्दु पर ले जाने पर रस्सी के चार विभाग होते हैं।

7.9 क्षेत्रफल प्राप्त करने के सूत्र –

1) वर्ग या आयत का क्षेत्रफल लम्बाई और चौड़ाई के गुणन से प्राप्त होता है।

मध्यात् कोटिप्रमाणेन मण्डलं परिलेखयेत्।

अतिरिक्तत्रिभागेन सर्वं तु सहमण्डलम्॥

चतुरस्त्रेऽक्षणया रज्जुर्मध्यतः संनिपतयेत्।

परिलेख्य तदर्धेनार्धमण्डलमेव तत्॥ मा.शु.सू. 10.1.1.8

2) समकोण त्रिभुज का क्षेत्रफल आधार और लम्बरूप भुजा के गुणन का आधा होता है।

द्विपुरुषः करणी श्रोणी बाहुस्तु द्विगुणो भवेत् त्रिंकुष्ठवत् त्र्यवलम्बकः ततो यश्चतुरस्त्रे द्वाष्टमाः पुरुषाः॥ मा.शु.सू. 10.3.2.12

प्रश्नावली

1) वेदि के कितने प्रकार होते हैं ?

2) यज्ञ मण्डप कितने प्रकार के होते हैं ?

3) वर्ग का क्षेत्रफल ज्ञात करने के लिए शुल्बसूत्र का प्रमाण लिखिए ।

4) समकोण त्रिभुज का क्षेत्रफल ज्ञात करने के लिए शुल्बसूत्र का प्रमाण लिखिए ।

5) रस्सी के विभाग करने की भौमितिक परिकल्पना को बताइए ।

6) सूर्य की सहायता से दिशा निश्चित किस प्रकार की जा सकती है ?

अध्याय - 8

स्वास्थ्य एवं प्रसन्नता के लिए योग

8.1 स्वास्थ्य एवं प्रसन्नता का अर्थ –

आयुर्वेद की सुश्रुत संहिता में **स्वास्थ्य की परिभाषा** का वर्णन करते हुए कहा है कि –

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलः क्रियाः।

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

सुश्रुत संहिता 15.4.1

जिस व्यक्ति के शरीर मे त्रिदोष (वात, कफ, पित्त) की स्थिति सन्तुलित हो, देहाग्नि तथा जठराग्नि समान हो, सभी धातुएँ (रस, रक्त, माँस, भेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) सम्यक् अवस्था में हो, मल (स्वेद, केश, लोम आदि) समुचित हो तथा सभी शारीरिक क्रियाएँ सुचारू हों। इसी के साथ मन, इन्द्रियाँ तथा आत्मा प्रसन्न, निर्विकार एवं आनन्दित अवस्था में हो ऐसा व्यक्ति स्वस्थ कहा गया है।

उपरोक्त परिभाषा के आधार पर यह तथ्य स्पष्ट है कि केवल शारीरिक रूप से रोग रहित होना ही पूर्ण निरोगी नहीं होता, वरन् मन, आत्मा एवं इन्द्रियों की प्रसन्नचित अवस्था का समावेश होने पर ही सम्पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति सम्भव है।

इसी तथ्य को इन्गित करते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी स्वास्थ्य को इस प्रकार परिभाषित किया ।

स्वास्थ्य से तात्पर्य केवल शरीर में रोगों की अनुपस्थिति से ही नहीं, बल्कि शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक रूप से आनन्दित, निर्विकारता एवं निश्चलता से है।

- विश्व स्वास्थ्य संगठन (सन् 1948)

प्रसन्नता हमारे मन एवं शरीर में किसी प्रिय प्रसंग अथवा घटना के दौरान उद्दीप्त होने वाले सकारात्मक संवेगों की अभिव्यक्ति है। वहीं, **आनन्द** ऐसी अवस्था है, जिसका आश्रय पाकर मनुष्य सदा ही सकारात्मक, सहज एवं उत्साह से परिपूर्ण हो जाता है। उसे प्रसन्न रहने के लिए किसी प्रसंग अथवा परिस्थिति की आवश्यकता नहीं होती। हर दिन, हर क्षण उसे उत्सव के रूप में ही प्रतीत होता है। सम्भवतः उक्त परिभाषाओं में स्वास्थ्य के संदर्भ हेतु 'प्रसन्नता' का यही तात्पर्य है।

स्वास्थ्य एवं आनंद प्राप्ति की कामना करते हुए वेदों में भी इस प्रकार कहा गया है कि-

वहीं, यौगिक अभ्यास जैसे – आसन, प्राणायाम, ध्यान, मुद्रा आदि विषयों से सम्बन्धित योगशास्त्र (हठयोगप्रदीपिका) में यौगिक क्रियाओं के सिद्ध हो जाने के परिणाम स्वरूप कहा गया है कि-

वपुःकृशत्वं वदने प्रसन्नता नादस्फुटत्वं नयने सुनिर्मले।

अरोगता बिन्दुजयोऽग्निदीपनं नाड़ीविशुद्धिर्हठसिद्धिलक्षणम् ॥

हठयोगप्रदीपिका 2.78

शरीर में लाघव्य (हलकापन), मुखपर प्रसन्नता का भाव, स्वरों में सौष्ठव, नेत्रों में निर्मलता (तेजस्विता), आरोग्यता, बिन्दु (आज्ञाचक्र से स्त्रावित होने वाला स्त्राव) पर नियन्त्रण, जठराग्नि की प्रदीप्ति तथा नाड़ियों की निर्विकारता (विशुद्धता), ये सब हठसिद्धि के लक्षण हैं।

यौगिक क्रियाओं जैसे **आसन** के अभ्यास से शरीर के सभी अंग – प्रत्यंगों की समुचित मालिश होती है एवं रक्त परिसन्चरण बढ़ता है, जिससे शरीर में पुष्टता आती है। पाचन संस्थान, तन्त्रिका तन्त्र, स्नायु की कार्यप्रणाली, अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों द्वारा हार्मोन का उत्सर्जन, मस्तिष्क आदि सभी सुव्यवस्थित, सुचारू एवं संयोजित रूप से कार्य करते हैं, जिससे शारीरिक स्वास्थ्य लाभ की प्राप्ति होती है। वैज्ञानिक शोधों के द्वारा, आसनों के अभ्यास से जीवन की गुणवत्ता में अप्रत्याशित सुधार देखा गया है। जहरीले पदार्थों का निष्कासन, चयापचय प्रणाली की क्रियाशीलता में वृद्धि, नसों एवं मांसपेशियों के बीच अद्भुत समन्वय , रोग प्रतिरोधक प्रणाली

का बेहतर होना, हृदय तथा अन्य सभी अंगों का स्वास्थ्यलाभ एवम शारीरिक क्रियाओं का समुचित क्रियान्वयन आदि पक्ष योगासनों के माध्यम से सिद्ध होते हैं।

प्राणायाम के माध्यम से प्राणों का नियमन, विस्तार एवं नियन्त्रण प्राप्त होता है, जिससे प्राणिक एवं भावनात्मक संवेगों के मध्य सामन्जस्य उत्पन्न होता है। श्वसन तन्त्र एवं फेफड़ो की कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। साथ ही शारीरिक एवं मानसिक पक्ष के मध्य सामञ्जस्य स्थापित होता है। वैज्ञानिक एवं शोधकर्ताओं ने यह पाया कि सामान्य व्यक्ति लगभग 500 मिलीलीटर ऑक्सीजन ग्रहण करता है, परन्तु अनुलोम विलोम, भस्त्रिका आदि प्राणायामों के निरंतर अभ्यास करने वाले साधकों को चार से छह लीटर ऑक्सीजन ग्रहण करते हुए पाया गया। प्राणायाम के अभ्यास से सम्पूर्ण शरीर में अथाह जीवनशक्ति का प्रवाह होता है, जिससे शरीर के सभी अंग एवं मन तथा इन्द्रियाँ सकारात्मक रूप से प्रभावित होते हैं, बेहतर ऑक्सीजन आपूर्ति एवं रक्त कणिकाओं में वृद्धि होती है, निद्रा सुव्यवस्थित होती है एवं शरीर तथा मन को अद्भुत विश्रांति प्राप्त होती है।

प्राणायाम, सम्पूर्ण नाड़ीशास्त्र पर आधारित चिकित्सा विज्ञान है। नाड़ीशोधन प्राणायाम के अभ्यास से शरीर की सभी नसों तथा नाड़ियों में व्याप्त विषाक्त पदार्थों का निष्कासन हो जाता है, जिससे सम्पूर्ण नाड़ीमण्डल, परिसंचरण तन्त्र एवं तन्त्रिका तन्त्र के प्रवाह मार्ग में अवरुद्ध मलों का शमन हो जाता है तथा उक्त संस्थानों की कार्यप्रणाली सुव्यवस्थित एवं सुचारू होती हैं। प्राणायाम के अभ्यास से शरीर मे व्याप्त सांवेगिक एवं विद्युत प्रवाह सुषुम्ना नाड़ी में गमन करने लगता है, जिससे शरीर मे उपस्थित चक्रों में ऊर्जा का संचरण प्रारम्भ होने लग जाता है, जो मनुष्य की चेतना को उच्च स्तर तक परिष्कृत करता है।

ध्यान एवं मुद्रा के अभ्यासों से मस्तिष्क में अद्भुत क्षमताओं का विकास होता है। ध्यान के दौरान मस्तिष्क का संरचनाओं में सकारात्मक परिवर्तन देखे गए हैं। इन्ही परिवर्तनों के साथ अल्फा तरंगों की उत्पत्ति दृष्टिगोचर हुई, जो बौद्धिक विकास तथा स्मृति में वृद्धि एवं रचनात्मक तथा सृजनात्मक क्षमताओं को भी विकसित करने में पूर्ण समर्थ है। ध्यान के अभ्यास से शरीर में नकारात्मक हार्मोन्स का स्तर कम पाया गया एवं वही सकारात्मक हार्मोन्स के स्तरों में वृद्धि देखी गई। योगनिद्रा का अभ्यास मस्तिष्क का भाग को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है, जो तनाव प्रबन्धन (स्ट्रेस मैनेजमेंट) के रूप अत्यन्त सहायक है।

प्रश्नावली

1) नाड़ीशोधन प्राणायाम का महत्त्व लिखिए ।
2) आसनों से होने वाले लाभों का वर्णन करिए ।
3) ध्यान का संक्षिप्त वर्णन करें ।
4) आयुर्वेद तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा वर्णित 'स्वास्थ्य' की परिभाषाओं को समझाते हुए दोनों के मध्य सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए ।
5) 'प्रसन्नता' विषय पर प्रकाश डालते हुए हठयोग सिद्धि के लक्षणों का वर्णन कीजिए।
6) 'स्वास्थ्य एवं प्रसन्नता के सन्दर्भ में योग' की विस्तृत व्याख्या कीजिए ।

अध्याय - 9

प्राचीन भारतीय गणित

9.1 गणितशास्त्र का उद्भव –

$10^0 = 1$	$10^1 = 10$	
10^2 = शत	10^3 = सहस्त्र	10^4 = अयुत
10^5 = नियुत	10^6 = प्रयुत	10^7 = अर्बुद
10^8 = न्यर्बुद	10^{16} = समुद्र	10^{17} = मध्यं
10^{18} = महामध्यं	10^{19} = अंत्य	10^{20} = महाअंत्य
10^{21} = पराद्ध	10^{22} = अग्नि	10^{23} = इष्टिका
10^{26} = सनत्वं	10^{27} = लोकं	

9.2 भिन्न परिकर्म –

यजुर्वेद में चतुर्थांस अर्थात् ¼ के लिए 'पाद' शब्द का प्रयोग हुआ हैं।

त्रिपादूर्ध्व ऽ उदैत्पुरूषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः। (यजु. 31.4)

परमात्मा का त्रिपाद् अर्थात् ¾ अंश संसार के बाहर है और एक पाद् अर्थात् ¼ अंश यह संसार है।

कला 1/16, कुष्ठा 1/12, शफ 1/8, पाद या पद ¼

अंशः / ऋग. 7.32.12 / भागम् / ऋग. 8.100.1

भाग या हिस्से के अर्थ मे अंश और भाग शब्दों का प्रयोग हुआ है।

भिन्नों का प्रयोग गणना कार्य में किया जाता हैं।

9.3 शून्य क्या है -

शून्य के लिए वेदो में 'ख' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'ख' का अर्थ है – आकाश, इन्द्रिय, रिक्त स्थान, छिद्र, द्वार, अन्तरिक्ष।

"खे रथस्य।" (ऋग. 8.91.7) अर्थात् रथ के छिद्र में

"ओं खं ब्रह्म।" (यजु. 40.17)" अर्थात् ब्रह्म आकाशवत् शून्य हैं।

शून्य का कम्प्यूटर की बायनरी भाषा (0,1) में उल्लेख है।

कम्प्यूटर किसी भी नम्बर को सर्वप्रथम बायनरी भाषा में परिवर्तित करता है फिर उस पर ऑपरेशन क्रियान्वित करता हैं।

9.4 ज्यामिति या रेखागणित –

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत् परिधिः क आसीत्।

छन्दः किमासीत् प्रउगं किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे॥

(ऋग. 10.130.3)

ऋग्वेद के इस मन्त्र मे रेखागणित से सम्बद्ध ये शब्द हैं।

1) प्रमा – नाम, परिमाण

2) प्रतिमा – नक्शा, रूपरेखा

3) निदानम् – कारण, मूल सिद्धान्त

4) परिधि – घेरा

5) छन्द – नापने का साधन, रज्जु

6) प्रउग – शुल्बसूत्रों में समद्विबाहु त्रिभुज

चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिः चक्रं न वृत्तं त्यतीँरवीविपित्।

(ऋग. 1.155.6)

एक वृत्त में 4 × 90 = 360 अंश होते हैं। ऐसे कालचक्र को भगवान विष्णु घुमाते हैं। एक वृत्त में 90 अंश के 4 खण्ड त्रिज्या होते हैं।

यज्ञवेदि और रेखागणित –

द्विप्रमाणा चतुः करणी, त्रिप्रमाणा नवकरणी, चतुः प्रमाणा षोडशकरणी अर्थप्रमाणेन पादप्रमाणं विधीयते। - कात्यायन शुल्बसूत्र

अर्थात दोगुनी रेखा से 4 वर्ग बनेंगे, तिगुनी रेखा से 9 वर्ग बनेंगे, चौगुनी रेखा से 16 तथा आधी रेखा से चौथाई वर्ग बनेगा। जितने मात्रक किसी रेखा में होंगे, वर्गों की उतनी ही पंक्तियां उसके वर्ग में होंगी।

1) **पाइथागोरस प्रमेय का ज्ञान** बोधायन शुल्बसूत्र में मिलता हैं।

दीर्घचतुस्रस्याक्ष्णयारज्जुः पार्श्वमानी तिर्यङ्मानी च।

यत्पृथग्भूते कुरुतस्तदुभयं करोति॥ (बौधायन शुल्बसूत्र 1.48)

अर्थात् दीर्घचतुस्थ (आयत) की तिर्यङ्मनी और पार्श्वमानी भुजाएँ जो 2 वर्ग बनाती हैं, उनके योग के बराबर अकेली अक्ष्ण्यारज्जु वर्ग बनाती है।

2) **पाई का मान** – मानव शुल्बसूत्र में कहा गया है कि 2 हाथ का वर्ग, एक हाथ, तीन अंगुल अर्धव्यास पर बने हुए वृत्त के बराबर होता है।

बोधायन ने वृत्त को वर्ग में परिणत करने के लिए एक नियम बताया था, जिसमें आर्यभट्ट ने पाई का मान 3.1416 निकाला।

भास्कराचार्य ने लीलावती में π के मान का स्थूल रूप बताया है । 7 से विभाजित 22 को व्यास से गुणा करने पर उस परिधि का स्थूल मान प्राप्त होता है ।

आर्कमिड़ीज ने बाद में पाई का मान 3.1428 निकाल लिया था।

प्रश्नावली

1) सम संख्याओं एवं विषम संख्याओं का क्या उपयोग है ?
2) पाई का मान निकालने की आर्यभट्ट की विधि लिखिए ।
3) बौधायन शुल्बसूत्र के द्वारा पाइथागोरस प्रमेय को समझाइए ।
4) ज्यामिति या रेखागणित को वेद वाङ्मय के परिपेक्ष्य मे समझाइए ।

अध्याय - 10

सामाजिक वानिकी एवं जैवविविधता की परिकल्पना

10.1 प्रस्तावनाः -

संस्कृत वाङ्मय के प्राचीन ग्रन्थ रामायण एवं महाकवि कालिदास द्वारा रचित कुमारसंभवम् आदि ग्रन्थों में प्रकृति का सजीव चित्रण किया है।

10.2 वाल्मिकी रामायण में पौधो की विविधता का वर्णन -

प्रसिद्ध महाकाव्य रामायण में चित्रकूट वनम् दण्डक आरण्य वन, किष्किंधा वन, अशोक वाटिका एवं हिमालय पर्वत श्रेणियो में स्थित वनों के बारे में बताया गया है। प्राणदायक हिमालयी सन्जीवनी औषधि का भी उल्लेख मिलता है।

रामायण में वर्णित वनों के प्रकारः-

1. शांतम्   2. मधुर

3. रूद्र   4. वीभत्स

10.3 चित्रकूट वनः- उष्णकटिबंधीय पर्णपाति वन

स्थान- मध्यप्रदेश के सतना जिले की सीमा एवं उत्तरप्रदेश के चित्रकूट जिले की सीमा पर स्थित है।

जलवायु- नदियों, झीलों, तालाबों आदि जल के स्रोत की उपस्थिति के कारण इस क्षेत्र की शीत जल वायु है एवं घने वन जल चक्र को संरक्षण प्रदान करते हैं।

वर्षा- इस क्षेत्र में दक्षिण-पश्चिमी मानसून द्वारा वर्षा होती है।

10.4 पञ्चवटी वाटिका -

1. औषधीय महत्व -

इन 5 वृक्षों में अद्वितीय औषधीय गुण हैं। इनमें वे समस्त गुण निहत हैं जिससे मनुष्य दीर्घायु रहकर अपने समस्त रोगों का निदान कर सकता है। आँवला विटामिन सी का सबसे समृद्ध स्रोत है एवं शरीर को रोग प्रतिरोधी बनाने की महाऔषधि है। बरगद का दूध बहुत

बलदायी होता है। इसके प्रतिदिन सेवन से शरीर का कायाकल्प हो जाता है। जीवनी शक्ति में विलक्षण अभिवृद्धि होती है एवं शरीर में नवचेतना का संचार होता है। पीपल रक्त विकार दूर करन वाला वेदनाशामक एवं शोथहर होता है। बेल पेट सम्बधी बीमारियों की अचूक औषधि है तो अशोक स्त्री विकारों को दूर करने वाला प्रमुख औषधीय वृक्ष है।

2. पर्यावरणीय महत्त्व -

1. बरगद शीतल छाया प्रदान करने वाला एक विशाल वृक्ष है। गर्मी के दिनो में अपराह्न में जब सूर्य की प्रचंड किरणें असह्य गर्मी प्रदान करती हैं एवं तेज लू चलती है तो पञ्चवटी में पश्चिम के तरफ स्थित वटवृक्ष सघन छाया उत्पन्न कर पञ्चवटी को ठंडा व वातानुकूलित रखता है।
2. पीपल प्रदूषण शोषण करने एवं प्राण वायु उत्पन्न करने का सर्वोत्तम वृक्ष है। प्रातःकाल जब नवीन आभा लिए अरुणोदय होता है तो सूर्य की निर्मल रश्मियों से पीपल का वृक्ष आध्यात्मिक वातावरण उत्पन्न करता है एवं इसके प्रभाव में आने वाले प्राणियों की मेधा प्रखर होती है। सम्भवतः इसी प्राप्त हुआ एवं इसका नाम "बोधि-वृक्ष" पड़ा।
3. अशोक सदाबहार वृक्ष है यह कभी पर्ण-रहित नहीं रहता एवं सदैव छाया प्रदान करता है।
4. बेल की पत्तियों काष्ठ एवं फल में तेल ग्रन्थियाँ होती हैं जो वातावरण को सुगन्धित रखती हैं।
5. पछुआ एवं पुरूवा दोनों की तेज हवाओं से वातावरण में धूल की मात्रा बढ़ती है जिसको पूरब व पश्चिम में स्थित पीपल एवं बरगद के विशाल वृक्ष अवशोषित कर वातावरण को शुद्ध रखते हैं।

3. धार्मिक महत्त्व -

बेल व बरगद मे भगवान शंकर का निवास माना गया है तो पीपल और आंवले में विष्णु का। अशोक शोक नाशक व सीता की स्मृति से जुड़ा है।

नक्षत्र वाटिका -

हर वृक्ष के नक्षत्र का चित्र व उस नक्षत्र के स्वामी का नाम वृक्ष के नाम साथ लिख कर प्रदर्शित किया जा सकता है।

नक्षत्रों के वृक्षों का संक्षिप्त परिचय निम्नानुसार है -

1. कुचिला (कारस्करः) - मध्यम उँचाई का वृक्ष जो मध्य भारत के वनों में पाया जाता है। इसके टिकियानुमा बीजों में विष बहुत अधिक औषधीय महत्त्व का होता है।
2. आँवला (धात्री) - इसके फल को अमृत फल कहा गया है जो विटामिन 'सी' का समृद्धतम् स्रोत है।
3. गूलर (उदुम्बरः) - बड़े आकार का छायादार वृक्ष। शुक्र ग्रह की शान्ति में इसकी समिधा प्रयुक्त होती है।
4. जामुन (जम्बू) - बहते जल क्षेत्रों के नजदीक आसानी से उगने वाला वृक्ष। मधुमेह की श्रेष्ठतम औषधि।
5. खैर (खदिरः) - मध्यम उँचाई का कांटेदार वृक्ष। इसकी लकड़ी से कत्था बनता है।
6. शीशम/तेंदू (कृष्णः) – आर्द्रा नक्षत्र हेतु वर्णित नक्षत्र वृक्ष शब्द कृष्ण के अर्थ में दोनों वृक्ष आ जाते है।

   शीशम - ऊँचे वृक्ष वाली महत्त्वपूर्ण काष्ठ प्रजाति।

   तेंदू – काले तने वाला वृक्ष जिसकी पत्तियाँ बीड़ी बनाने के काम आती हैं।
7. बांस (वंशः) – इसे गरीब की इमारती लकड़ी कहते हैं।
8. पीपल (अश्वत्थः) – अति पवित्र वृक्ष। भगवान बुद्ध को इसी वृक्ष के नीचे बोधि प्राप्त हुई थी।
9. नागकेसर (नागः) – मुख्य रूप से असम के आर्द्र क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से उगने वाला वृक्ष। इसकी लकडी अत्यधिक कठोर होती है।
10. बरगद (वटः) – वट सावित्री व्रत में महिलाओं द्वारा पूजा जाने वाला बहुत बड़ी छायादार प्रजाति।
11. पलाश (पलाशः) – सूखे व बंजर क्षेत्रों में उगने वाला मध्यम उँचाई का वृक्ष।

    फूल से होली पर खेलने वाले रंग बनाते हैं। इसे वन ज्वाला (फ्लेम आफ द फारेस्ट) भी कहते हैं।

12. पाकड़ (प्लक्षः) – घनी शीतल छाया देने के लिए प्रसिद्ध वृक्ष।
13. रीठा – मध्यम उँचाई का वृक्ष जिसका फल झाग देने के कारण धुलाई के कार्यों में प्रयुक्त होता हैं।
14. बेल (बिल्वः) - कठोर कवच के फल वाला मध्यम उँचाई का वृक्ष जिसकी पत्तियां शिवजी की पूजा में चढ़ाई जाती हैं।
15. अर्जुन (अर्जुनः) - जलमग्न या ऊँचे जलस्तर वाले क्षेत्रों में आसानी से उगने वाला वृक्ष है। इसकी छाल हृदय रोग की श्रेष्ठतम औषधि है।
16. कटेरी (कण्टकारी) – छोटी उँचाई के इस वृक्ष के कांटे बहुशाखित होते हैं, इसके फल त्रिदोषनाशक होते हैं।
17. मौलिश्री – दक्षिण भारत में प्राकृतिक रूप से उगने वाला छायादार-शोभाकार वृक्ष।
18. चीड़ (देवदारू) – ठंडे पहाड़ी क्षेत्र में उगने वाली सुई जैसी पत्तियों वाला सीधी ऊँचाई में बढ़ने वाला वृक्ष जिसकी छाल पतली होती है।
19. साल (सर्जः) – प्रदेश के तराई क्षेत्र में प्राकृतिक रूप से उगने वाला अति महत्त्वपूर्ण प्रकाष्ठ वृक्ष।
20. वञ्जुल (जलवेतसः) - बहते जल स्त्रोतों के किनारे उगने वाला छोटी उँचाई का वृक्ष।
21. कटहल (पनसः) – मध्यम उँचाई का वृक्ष जिसके बृहदाकार फल की सब्जी खाई जाती है।
22. आकड़ा (अर्कः) – बंजर शुष्क भूमि पर उगने वाली झाड़ी जैसी प्रजाति।
23. शमी – छोटे कांटों वाला छोटी उँचाई का वृक्ष जिसे उ.प्र. में छ्योंकर व राजस्थान में खेजड़ी कहते हैं।
24. कदम्ब – भगवान कृष्ण की स्मृति से जुड़ा ऊँचा वृक्ष जो आर्द्र क्षेत्रों में आसानी से उगता है।
25. आम (आम्रः)- भारत में फलों के राजा के नाम से विख्यात है।
26. नीम (निम्बः) – गाँव के वैद्य नाम से प्रसिद्ध औषधीय महत्त्व का वृक्ष।
27. महुआ (मधुः) – शुष्क पथरीली व रेतीली भूमि में उगने वाला वृक्ष।

प्रश्नावली

1) जैवविविधता किसे कहते है ?

2) चित्रकूट वन क्षेत्र के बारे में बताइए।

3) नक्षत्र वाटिका क्या है ?

4) दण्डक आरण्य वानिकी में किस प्रकार के वन पाए जाते थे।

5) वैदिक वाङ्मय में जैवविविधता पर प्रकाश डालिए।

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

द्वारा सञ्चालित एवं प्रस्तावित राष्ट्रीय आदर्श वेद विद्यालय

महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन (म.प्र.)

(शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार)

वेदविद्या मार्ग, चिन्तामण, पो. ऑ. जवासिया, उज्जैन - ४५६००६ (म.प्र.)

Phone : (0734) 2502266, 2502254, E-mail : msrvvpujn@gmail.com, website - www.msrvvp.ac.in